'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

वर्ष ४७] वैशाख २०४५ वि०–मई १९८८ [संख्या २

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल जी की १०१ वीं जयन्ती

'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी का 'चण्डी' में प्रकाशित प्रथम निवेदन
('चण्डी' वर्ष १, चैत्र शुक्ल ८, सम्वत् १९९९ : १९४२)

"जगज्जननी चण्डी के चरणारविन्द में अनुराग रखनेवाले धर्म-भीरु एवं श्रद्धालु बन्धुओं के सहयोग के आधार पर 'चण्डी' का प्रकाशन आरम्भ किया जा रहा है।

इस पत्रिका का उद्देश्य जनता में महा-माया की महिमा का प्रचार और कर्म तथा उपासना की ओर उसे प्रवृत्त करना है।

जिन महा-माया की महिमा के प्रचार के लिये "चण्डी" कर्म-क्षेत्र में अवतीर्ण हो रही है, उनका भी आविर्भाव एक ऐसे संकट-काल में हुआ था, जब कि दुर्धर्ष दानवों के त्रास से जगत् संत्रस्त था। भगवती ने आविर्भूत होकर अपने चण्ड विक्रम से दानवों का संहार करके जगत् में शान्ति स्थापित की।

यह कितने सुख की बात होगी, यदि हम 'चण्डी' के द्वारा भी इस पुण्य-भूमि भारत के धार्मिक विप्लव को दूर करके हिन्दू सन्तानों को महा-माया के चरणों में रत करने में तथा उन्हें शान्ति-मय जीवन व्यतीत करने को ओर प्रवृत्त करने में समर्थ हो सकेंगे।"

सामान्य वार्षिक मूल्य : ४५-०० रु०

सप्तशती का महत्त्व

वेदान्त में जितने भी वाद हैं, उनमें तीन प्रधान हैं—१ द्वैत, २ विशिष्टाद्वैत और ३ अद्वैतवाद। 'सप्तशती' के तीनों चरितों में क्रमशः यही तीन वाद हैं। साधक को इन तीनों रास्तों से गुजरना पड़ता है।...इसका यह अर्थ नहीं है कि 'सप्तशती' में केवल मोक्ष ही का वर्णन है और कुछ नहीं। 'सप्तशती' में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी भरे पड़े हैं। दूसरे शब्दों में 'सप्तशती' भोग और मोक्ष दोनों का साधन है।

—पं० श्रीकान्तबिहारी मिश्र

'सप्तशती' में उद्धृत वचनों से 'सप्तशती' के रचना-काल का निर्णय किया जा सकता है। 'सप्तशती' की आदि रचना महर्षि मेधा के द्वारा द्वितीय स्वारोचिष मन्वन्तर के सत्य-युग में हुई। इस प्रकार कोई भी हिसाब लगाकर 'सप्तशती' के आविर्भाव के गत करोड़ों वर्षों के काल को ज्ञात कर सकता है। यह मन्त्र-मय दिव्य ग्रन्थ तभी से मन्त्र-शास्त्र का प्राण बना हुआ है। —'धर्म-रञ्जन' डा० निमाईचन्द्र घोष

'सप्तशती' साधक को कर्म-योग में प्रवृत्त करती है, अकर्मण्य नहीं रहने देती। सुरथ-समाधि की तपस्या से उपासना की शिक्षा मिलती है और ब्रह्मा की तथा अन्य देवताओं की स्तुतियों से अनेक स्वरूपों का बोध होता है। अन्ततः 'सप्तशती' केवल मस्तिष्क की कसरत नहीं, किन्तु पूर्ण व्यवहार्य और इह तथा पर दोनों लोकों में परम सहायिका एवं शान्ति-आनन्द देनेवाली है।

—'दरभङ्गा-राजवंश-सम्भूत' श्रीश्यामानन्द नाथ

'सप्तशती' के पाठ के सिद्ध होने के अपने कारण हैं। चिर-काल से इसका पाठ होता आ रहा है। अगणित सामान्य सादे पाठ हो चुके हैं; पुटित पाठों की भी गणना नहीं की जा सकती और सम्पुटित भी सहस्रशः हो चुके होंगे। इसलिये इन सभी पाठों की महा-सिद्धि कभी को हो चुकी है। वस्तुतः इस विश्व के अणु-अणु में सप्तशती-पाठ की सिद्धि की गूँज भरी हुई है। सप्तशती के मन्त्रों से हुत हवन की असंख्य स्वाहायें विश्व के पञ्च-भूतों में और सर्वत्र व्याप्त हैं। अतः भारत के लिये, भारतीयों के लिये और समस्त विश्व के कल्याण के लिये, 'सप्तशती-पाठ' अति लाभकारी है, इसमें सन्देह नहीं।

—'कौलानन्दनाथ' श्री प्रभातकुमार बनर्जी

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ४७] वैशाख २०४५ वि०—मई १९८८ [संख्या २

१ सम्पादकीय : माहात्म्य-निदर्शन १
२ सप्तशती और शाप-मोचन २
३ श्री दुर्गा सप्तशती और शाप-मोचन : पं० प्रवर स्व० श्रीहरि शास्त्री दाधीच ३
४ शाप-मोचन-सम्बन्धी जिज्ञासा का समाधान : आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री ७
५ सप्तशती का पाठ ८
६ 'सप्तशती-पारायण' का महत्त्व : श्रीविद्या-मार्तण्ड श्री सामो शास्त्री ९
७ 'चण्डी' की महिमा और उसकी साधना : 'कौल-कल्पतरु' स्व० पं० देवीदत्त शुक्ल ११
८ 'दुर्गा-सप्तशती' के पाठ की महिमा : स्व० श्रीराजेन्द्रलाल दास १३
९ श्री चामुण्डा-चालीसा : 'तन्त्राचार्य' श्रीजगदीशशरण बिलगइयाँ 'मधुप', दतिया, म० प्र० १४
१० श्री जगदम्बा-चालीसा : पण्डित वेनीमाधव त्रिपाठी, मुलुण्ड, बम्बई १५
११ तेलुगू भाषा में 'चण्डी' १६
१२ श्री ललिता-विजयम् : पूज्य श्री १००८ श्रीस्वामी अद्वयानन्द सरस्वती, त्रिची, तमिलनाडु १७
१३ श्री चामुण्डेश्वरी देव्यालय के प्रतिष्ठापक —'कुलाचार्य' श्री वेंकट रमणय्या जी २२

सम्पादकीय

माहात्म्य-निदर्शन

आस्तिक हिन्दू समाज में 'दुर्गा सप्तशती' का अत्यधिक आदर तथा प्रचार है, यह सर्व-विदित है। इसका एक विशेष कारण भी है। वह यह है कि यह धर्म-ग्रन्थ सभी प्रकार के दुःखों, कष्टों और आपदाओं के निवारण करने में बार-बार सफल सिद्ध हुआ है।

अतएव जब कोई भी आस्तिक व्यक्ति आधि-व्याधि से पीड़ित होता है, तब वह इसी स्तव-राज की शरण लेता है और शीघ्र ही सभी सङ्कटों से मुक्त हो जाता है।

यही नहीं, अनेक लोग अपने अभ्युदय के लिए इसी के द्वारा जगज्जननी का यजन-पूजन करते रहते हैं और अपने मनोरथ को पूर्ण करते देखे जाते हैं।

अपने इसी माहात्म्य की बदौलत 'दुर्गा सप्तशती' की आस्तिक, हिन्दुओं के घरों में, वे चाहे किसी भी सम्प्रदाय के हों, नित्य पूजा होती रहती है।

ऐसे महान्, अमोघ स्तव-राज के सम्बन्ध में प्रस्तुत 'चण्डी' अङ्क द्वारा संक्षेप में शाप-मोचन-सम्बन्धी जिज्ञासा का समाधान तथा पारायण, साधना का महत्व प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, पाठक बन्धु उसे ध्यान से पढ़ेंगे और 'दुर्गा सप्तशती' का स्वयं नित्य-पाठ करते हुए लाभान्वित होंगे।

सप्तशती और शाप-मोचन

'दुर्गा सप्तशती'—पाठ के आदि में शापोद्धार, उत्कीलन बीज-मन्त्र के पाठ का क्रम है। यथा —शापोद्धार सात बार, उत्कीलन इक्कीस बार।

अनेक साधकों का कथन है कि अम्बा जगज्जननी आदि-शक्ति हैं। ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र आदि की क्या सामर्थ्य है कि उसे शाप दें! फलतः जहाँ शत व सहस्र-चण्डी होती है, कोई शापोद्धार-उत्कीलन करते हैं और कोई नहीं करते हैं। इस सम्बन्ध में आगे दो विद्वान् साधक-बन्धुओं के 'चण्डी' वर्ष १५ में प्रकाशित महत्व-पूर्ण निबन्ध प्रकाशित किए गये हैं। निबन्ध में पं० प्रवर हरिशास्त्री दाधीच ने यह सिद्ध किया है कि सप्तशती के लिये शापोद्धार की कोई आवश्यकता नहीं है। आत्म-कल्याणार्थ कोई भी पाठक बिना शापोद्धार किये सप्तशती का पाठ कर सकता है। दूसरे निबन्ध में 'सप्तशती' के अनुष्ठान, काम्य-प्रयोग हेतु शापोद्धार का महत्व बताया गया है।

हमारी दृष्टि में दोनों निबन्ध अपने-अपने स्थान पर सही हैं। जो व्यक्ति आत्म-कल्याणार्थ निष्काम-भाव से नित्य सप्तशती का पाठ करते हैं, उन्हें शापोद्धार की आवश्यकता नहीं है। जो बन्धु किसी अनुष्ठान, काम्य-प्रयोग की भावना से पाठ करना चाहते हैं, उनके लिये शापोद्धार आवश्यक है। इस सम्बन्ध में पूज्य बाबाश्री ने भी 'मुमुक्षु मार्ग' पृष्ठ ३२ पर स्पष्ट रूप से लिखा है। यथा—

सप्तशती क्रौञ्च तथा वशिष्ठ द्वारा शापित है। क्रौञ्च किसी ऋषि का नाम नहीं है किन्तु एक पर्वत का नाम है। इस पर्वत पर अनेक ऋषि तपस्या करते थे। इस पर्वत के फटने से तपस्वियों को बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने 'माँ' को शाप दिया। किन्तु उस अनन्त महा-माया को शाप कैसे लग सकता है? अतएव वह शाप सप्तशती के ७०० मन्त्रों को लगा। इससे सप्तशती शापित हो गई। क्रौञ्च पर्वत के तपस्वियों का शाप क्रौञ्च-शाप के नाम से प्रसिद्ध है।

वशिष्ठ ऋषि के पुत्र शक्ति ऋषि को विश्वामित्र ने मार डाला। उस समय शक्ति ऋषि सप्तशती की आराधना कर रहे थे। इस पर भी जब विश्वामित्र से उनकी रक्षा न हो सकी, तो वशिष्ठ ऋषि ने सप्तशती को शाप दिया।

इन शापों के कारण सप्तशती के पाठ करने से जितना फल मिलना चाहिये, उतना नहीं मिलता। किन्तु इन दोनों शापों का मोचन भगवान् दक्षिणामूर्ति ने किया है। सप्तशती के पाठ करने-वालों को पहले शाप-मोचन मन्त्र का १० माला जप करना चाहिये और बाद में प्रत्येक पाठ करने के पूर्व २१ बार शाप-मोचन तथा २१ बार उत्कीलन का जप करना चाहिये। इस प्रकार सप्तशती का पाठ करने से उचित फल मिलता है। शाप-मोचन तथा उत्कीलन निम्न-लिखित हैं—

शाप-मोचन—ॐ ह्सौं ह्सकरीं ह्सैं ॐ ह्रीं ह्रीं सौः क्षम्ल प्लीं ङम्ल क्ष्फीं क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षौं क्षः कन्याभिराक्षिप्त षट्-कर्माणि त्रोटय त्रोटय सप्तशन्मन्त्राणि जाग्रय जाग्रय क्रौञ्च-वशिष्ठयोश्च शापयोः निर्वृत्तिं कुरु कुरु मोचय मोचय हुँ फट् स्वाहा।

उत्कीलन—ॐ क्लीं ह्रीं क्लीं विशुद्ध-ज्ञान-देहाय त्रिवेदी दिव्य-चक्षुषे। श्रेय-प्राप्ति-निमित्ताय नमः सोमार्द्ध-धारिणे ह्रीं ऐं स्वाहा॥

श्री दुर्गा सप्तशती और शाप-मोचन

'पण्डित प्रवर' स्व० श्रीहरि शास्त्री दाधीच

'सप्तशती' के शाप-मोचन हेतु लोग अनेक प्रकार के मन्त्रों से शाप-विमोचन करते हैं। पाठ में भी चरितों के व्युत्क्रम से पढ़ने का आदेश देते हैं। पाठ के आदि में वीजात्मक मन्त्र जपने का ७ बार, १० बार, १०० बार आदि का विधान प्रयुक्त करते हैं।

हम कई विद्वान् साधकों को इस उलझन में फँसे देखते हैं, शाप-मोचन करते हुए साधकों को इससे मनस्तुष्टि के अतिरिक्त कोई विशेष चमत्कार प्राप्त हुआ नहीं देखते हैं। और बिना शाप-मोचनों के सीधा सप्तशती श्री दुर्गा का पाठ करते हुए साधकों का कोई अनिष्ट-विशेष, जो इन शाप-मोचनों के न करने के ही कारण हुआ हो या होता हो, ऐसा भी नहीं देखते हैं।

हम आप सभी साधक, विद्वान्, भक्त आदि से पूछते हैं कि, क्या कहीं पुराणों—आगमों में ऐसे आर्ष-वचन मिलते हैं कि श्री जगदम्बा, महा-माया, आद्या, विश्वेश्वरी, चण्डिका को किसी महर्षि ने या ब्रह्मादि देवों में से किसी देवता विशेष ने शाप दिया है? यदि ऐसा है, तो वह किस कारण, किस प्रकार और कब दिया है? बतलावें या किसी विद्वान् से पूछकर वह प्रमाणादि लिखें।

शाप-मोचन को रुद्र-यामलादि का नाम लेकर प्रकट किया जाता है। हमने कई वर्षों से रुद्र-यामल की कई प्रतियाँ किसी खास कारण से देखीं। उनमें कहीं शाप होने का कारण प्राप्त न हुआ। जब शाप होना ही सम्भव नहीं, तो उसका मोचन कैसा और क्यों?

श्री चण्डिका महा-माया जगदम्बा में यही तो विशेषता देखने की है और पूरे ध्यान से विचारने की है कि और ब्रह्मादि देवों के शाप की कथाएँ पुराणों में—आगमों में बहुत मिलती हैं, जैसे विष्णु को भृगु-शाप सु-प्रसिद्ध है। अवतार-धारणा में मानुषी तनु में आने का भृगु का शाप ही कारण है, यह पुराण-प्रसिद्ध बात है। कृष्ण को सौबली (गांधारी) का शाप है। ऐसे ही और देवों की शाप होने की बातें हैं। पर किसी पुराण में या अन्य प्रसिद्ध मूल आगमों में श्री जगदम्बा महा-माया चण्डिका को कहीं शाप हुआ हो, ऐसी कथा न प्राप्त हुई।

बात सत्य भी यही है कि जो सब कुछ कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ हो, उसे शाप कौन दे सकता है! जो समस्त चराचर जगत् का हर समय कल्याण करती रहती है, जिसे कोई पक्षपात नहीं है, जिसका कहीं स्वार्थ नहीं है, जिसमें वैषम्य-नैर्घृण्य-दोष नहीं है, जिसके लिये कोई छोटा-बड़ा या ऊँच-नीच नहीं है, उस परमात्म-शक्ति महा-माया को कौन शाप दे, किस दोष पर या किस त्रुटि पर शाप देवे? शाप देनेवाला जिसे शाप देवे, उससे अधिक बलवान् आत्मावान् होता है, तब कोई किसी को शाप देवे। अब आप ही विचार कीजिये कि, भगवती महा-माया जगदम्बा से कोई देव या कोई महर्षि या कोई मुनि सिद्ध-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-नाग-किन्नर-चारण आदि अधिक शक्तिशाली या अधिक प्रतापवाला या तप-वाला-बलवाला-बुद्धिवाला है क्या, या हुआ है क्या, जिसने उसे शापित किया (शाप दिया)? यदि नहीं, तो फिर ये शाप की बातें विभीषिका मात्र और पाठ की या साधना की दुर्गमता बढ़ाने के अतिरिक्त और क्या हैं?

ऐसी बातों से देव-सिद्धियाँ प्राप्त होने में सुगमता की अपेक्षा दुर्गमता और कठिनता बढ़ती है। कारण इन बातों पर पूर्ण विचार करते हुए निर्णय करना सभी साधकों का कर्त्तव्य हो जाता है। यहाँ साधकों के लिए हम आगम के प्रमाणों से श्रीदुर्गा सप्तशती के शाप और शाप-मोचन की व्याख्या का निर्णय करने के लिए कुछ प्रामाणिक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं, ध्यान दीजियेगा—

'मेरु-तन्त्र' तन्त्रों में प्रधान तन्त्र माना गया है। उसमें द्वितीय प्रकाश—'संस्कार-प्रकाश' नाम से आया है। उसमें मन्त्रों के अनेक १६, ६, १० ऐसे संस्कार बतलाये हैं, उन संस्कारों के करने से शाप-मुक्त होना भी लिखा है। अनेक मन्त्र भी बतलाये हैं, उनके शाप देनेवाले देवों के नाम भी दिखाये हैं। बड़ा विस्तार है—परन्तु उन सबको ध्यान-पूर्वक पढ़ने पर भी सप्तशती या नवार्ण मन्त्र का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है।

इसी प्रकार 'देवी रहस्य' नामक प्रख्यात प्राचीन तन्त्र में भी बहुत मन्त्रों के उत्कीलन, संजीवन और उद्दीपनादि बतलाये हैं। उनमें भी हमको सप्तशती के शापादि का कोई प्रमाण न मिला। और तन्त्रों में भी अनेक देवी-मन्त्र और देवियों के नाम हैं परन्तु महा-काली, महा-लक्ष्मी, महा-सरस्वती, जो सब देवी-देवों की मूल-भूता महा-माया-स्वरूपा रहस्य-प्रतिपादिता हैं, उनके नाम से कोई शाप-उत्कीलनादिक नहीं मिलता है।

'रुद्र-यामल' के नाम से बहुत सी बातें निश्चय नहीं हो पाती हैं क्योंकि 'रुद्र-यामल तन्त्र' अपूर्ण ही छपा है, और लिखित जहाँ है, वहाँ भी यही सुनते हैं कि पूर्ण नहीं है। फिर भी उन मन्त्रों की खोज की, जिनसे शाप-मोचन करते हैं, वे अविकल रूप से 'रुद्र-यामल' में भी शाप के नाम से या शाप-मोचन के नाम से ज्यों-के-त्यों नहीं मिलते हैं। प्रत्युत सप्तशती के विषय में यही मिलता है कि, यह सर्व-मन्त्रात्मिका और सर्व-बीज-मयी है। शाप-मोचन के मन्त्र के बीज सभी इसके अन्तर्गत हैं और 'नवार्ण मन्त्र' के आदि के बीज इन सभी बीजों से अधिकाधिक शक्ति-शाली हैं—तब वे इनके शाप-मोचन की सामर्थ्य कैसे रख सकते हैं! देखिए, सप्तशती के ७०० मन्त्र हैं। उनके बीज भी ७०० हैं। इस प्रकार प्रत्येक मन्त्र के बीज हैं। (देखिये 'बीज-त्रयात्मक सप्तशती' एवं 'मन्त्रात्मक सप्तशती')।

इस प्रकार सप्तशती सर्व-बीज-मयी है तो वे बीज, जो इसके शाप-मोचन के लिए जपे जाते हैं, क्या हो सकते हैं? वे सभी प्रायः सर्वत्र इसके अन्तर्भूत हो गये हैं।

अब यह भी विचार लेवें कि 'शाप-मोचन' के मन्त्र क्या और कैसे हैं? जिन महाशयों ने इन्हें जहाँ से उद्धृत किया है, वहाँ का नाम नहीं लिखा है। आजकल की पुस्तक में वह इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिके देवि शापानुग्रहं कुरु-कुरु स्वाहा।

इस मन्त्र के आदि में 'नवार्ण' के दो बीज हैं, वाग्भव 'ऐं' बीज को छोड़ दिया है। आश्चर्य है कि जिस बीज ने सप्तशती के ७०० बीजों को समृद्ध और समादृत किया है, वही बीज नहीं है। फिर इन बीजों का अर्थ तन्त्राभिधान आदि मन्त्र-वर्ण और बीजार्थ-कोष के अनुसार विचार कर देखते हैं, तो वे अर्थ शाप-मोचन में सर्वथा अनुपयुक्त पड़ते हैं। तब किसे क्या कहें कि ये बीज सप्तशती के शाप-मोचन का कैसे निर्वाह करते हैं? विचार के लिए हम एक - दो बीजों का अर्थ बतलाते हुए, आपका ध्यान शापादि से निवृत्त कराते हैं—

'ह्रीं' बीज के विशेष-विशेष अर्थ सिद्धि और साध्य एवं साधक-भावानुसार भी लगावें, तो भी शाप-मोचन में उपयुक्त नहीं पड़ते हैं। जैसे वरदा-तन्त्रोक्त मन्त्रार्थाभिधान में कहा है—'ई' शब्द महा-माया है और 'नाद' विश्व-प्रसू है। 'विन्दु' दुःख-हरण के लिए। 'ह'कार शिव है, 'रेफ' अग्नि है। यथा—

महा-मायार्थ ई शब्दो नादो विश्व-प्रसूः स्मृतः। दुःख-हरार्थको विन्दुर्भुवनान्तेन पूजयेत्॥

यह 'ह्रीं' बीज का अर्थ है। 'ह' और 'र्' का अर्थ छूट गया है। उन्हें जोड़ने से भी सप्तशती के मन्त्रों के, सबके क्या दुःख हो गया है या क्या मूल-मन्त्र के 'ह्रीं' से विशेष प्राप्त हुआ है, जिससे उस बीज के इससे दुःख मिट जायँगे? भगवती ही जानती है। वही हमें प्रेरित कर रही है। ऐसे 'ह्रीं' और और बीजों के अर्थ भी वैसे ही हैं, जो पूर्वोक्त मूल-मन्त्र के बीजों के हैं। लेख-विस्तार-भय से हम उन सभी बीजों का अर्थ यहाँ प्रस्तुत नहीं करते हैं, पर पाठक इन दिग्दर्शनों से समझ लें कि उक्त मन्त्र भी एक सा नहीं है। कहीं 'ह्रीं श्रीं क्लीं' की जगह 'क्लीं श्रीं ह्रीं' मिलता है, कहीं 'क्रां क्रीं' की जगह 'ह्रां ह्रीं' मिलता है इत्यादि। अतः निश्चित निर्णीत यह बात नहीं हुई है।

अब शाप के न होने की बात सुनिए—त्रेता में परशुरामजी विष्णु के अवतार हुए हैं। उनका जीवन तप से उत्कृष्ट हुआ और वे परम उच्च तपस्वी रूप में रहे, उसी समय एक हैहय गोत्र के राजाओं का विशाल वंश प्रसिद्ध बली और धनी हुआ। उस वंश का विस्तार भू-मण्डल पर फैल गया था। उन राजाओं के गुरु भृगु-कुल के ब्राह्मण भृगु-वंशी ऋषि-महर्षि थे। वे सभी विद्वान्, नीतिज्ञ, तांत्रिक, शाक्त, सिद्ध थे। उनकी सहायता से वे राजा लोग निश्शंक राज्य करते थे। अनेक वर्षों तक यही क्रम चलता रहा। ब्राह्मण लोग राजाओं से धन-धान्य-सम्पदा प्राप्त कर सुखी थे। जब कोई शत्रु उनका होता या उन पर आक्रमण करता, तो वे स्वयं बल के द्वारा और गुरुओं की मन्त्र-सिद्धि के द्वारा सर्वदा विजयी होते थे। समय बीतते-बीतते एक बार बारह वर्षों तक अकाल पड़ा। सभी खाद्य पदार्थ महर्घता से दुर्लभ हो गये, तब हैहय-वंश के सभी राजा लोगों ने मिलकर सलाह की कि हम अपने गुरुओं, पुरोहितों को सर्व-समर्थ एवं धनी देख रहे हैं, तो इनसे इस विषम समय में कुछ धन लेकर विपद दूर कर लें।

ऐसी सलाह कर उन्होंने सभी आचार्यों से प्रार्थना की। तब सभी ब्राह्मण लोग उन्हें धन वापस देने से मुकर गये, साफ इन्कार कर गये। इसी अवसर पर राजाओं ने जमदग्नि महर्षि के आश्रम से गौ चुराने का साहस किया। वहाँ भ्रम से इनके हाथों महर्षि की कुछ गो मारी गईं। महर्षि को मालूम होने पर हैहय-वंशियों को अपने तपबल से हीन और श्री-विहीन कर दिया। तभी से जमदग्नि और हैहयवंशीय राजाओं में परम बैर बँध गया।

अवसर पाकर (हैहयों ने) जमदग्नि महर्षि का शिर काट लिया। तब परशुराम ने इनके नाश की प्रतिज्ञा की और अवसर पाकर इनका वध करने पर उतारू हुए। उस समय में भार्गव ब्राह्मणों से हैहयों ने फिर अपना सम्बन्ध वैसा ही स्थापित कर, उनसे मन्त्र-बल की सिद्धि द्वारा सहायता प्राप्त करना आरम्भ कर दिया।

ब्राह्मणों को उस समय गायत्री और श्रीदुर्गा सप्तशती, दश महा-विद्याएँ आदि अनेक तन्त्र-मन्त्र चेटकादि शतशः सिद्धि-प्राप्त थे। उनके द्वारा वे उन्हें (यजमानों को) संजीवित करते और पुनः प्रबल बना देते थे। ऐसे करते हुए कई बार अर्थात् २-४-५ बार प्रबलता पाकर परशुराम से लड़ते रहे। अन्त में पराजित तो होते थे; पर फिर-फिर कर सँभलते जाते थे। इस कारण को भगवान् परशुरामजी ने ध्यान-योग-बल से जब समझा, तब वे इन ब्राह्मणों पर बड़े कुपित हुए और इनकी मन्त्र-राशि को शाप दिया—वह शाप 'दुर्गोपासना-कल्पद्रुम' में भी दिखाया है। हम वह प्रमाण लिख देते हैं—पाठक स्वयं समझ लें (दुर्गोपासना-कल्पद्रुमे, पटल-निरूपण-प्रकरणे)—

देव्याः सप्तशती-स्तोत्रं तथा नाम-सहस्रकम्। श्लोकाष्टकं नैल-कण्ठं शैवं नाम-सहस्रकम्॥ १॥
त्रिपुरायाः प्रसादाख्यं सूर्यस्य स्तव-राजकम्। पैत्रो रुचि-स्तवो यश्च इन्द्राक्षी-स्तोत्रमेव च॥ २॥
वैष्णवं च महा-लक्ष्म्या स्तोत्रमिन्द्रेण भाषितम्। भागवाख्येन रामेण शप्तान्यन्यानि कारणात्॥३॥

इसके अन्त में स्पष्ट लिखा है कि 'अनेन गीता-सप्तशत्यादीनां शापाभावो लभ्यते।' अर्थात् इस प्रमाण से सप्तशती (दुर्गा) को शाप का अभाव है, यह सिद्ध हुआ। भगवद्-गीतादि १५ संख्या ऐसी हैं, जिन्हें छोड़कर अन्य सभी मन्त्र को शाप हुआ है। इससे स्पष्ट हो गया कि सप्तशती को कोई शाप ही नहीं है।

वे ब्राह्मण कई विद्याओं द्वारा उनकी सहायता करते थे। वे सब निष्फल हो जाने से सभी हैहय-वंशी राजा क्षत्रियों के वर्ग के वर्ग, परशुरामजी से रण में परास्त हो-होकर मरने लगे। बचे-खुचे कहीं भाग कर छुपे, प्राण-रक्षण कर लेते, फिर वे बढ़ते, फिर परशुरामजी उन्हें मारते, ऐसे २१ बार में परशुरामजी ने हैहय-वंश का मूलोच्छेद किया। यह आख्यान भागवत में और पुराणों में भी मिलता है। इस कथानक से आपको परशुरामजी के शाप का कारण भी मालूम हो गया और किन-किनको शाप है, यह भी मालूम हो गया। और सिद्धान्त की बात का निर्णय भी, कि सप्तशती को उन्होंने भी शाप नहीं दिया है, प्राप्त हो गया।

अब आप समझ लें कि जब शाप नहीं हुआ, तो उसका विमोचन क्या और क्यों तथा कैसे हो सकता है! बिलकुल निराधार, साधना के अन्दर, आडम्बर मात्र यह मालूम पड़ा। ऐसे ही 'मेरु-तन्त्र' में जो शापित मन्त्र हैं, जिन-जिन पर शाप है, उनके नाम लिखे हैं। उन मन्त्रों में न सप्तशती का नाम है, न नवार्ण मन्त्र ही वहाँ उल्लिखित किया है। पाठक लोग ध्यान से पढ़ लें, यहाँ उन सबका उल्लेख करने से लेख बहुत ही बढ़ जायगा।

यह सदा ही ध्यान में रखने की बात है कि 'शाप' शब्द शप् आक्रोशे और बोपदेव के धातु-कोषानुसार शप् सामर्थ्या-वन्धे धातु से बना है। जिनकी वाणी तप के प्रभाव से इतनी प्रबल हो कि वह अपने प्रतिद्वन्द्वी की मन्त्र-सिद्धि या सामर्थ्य को विफल बना दे, वे महान् पुरुष शाप के अधिकारी हैं और वे ही शाप दे सकते हैं। पर उनमें यह देखने की बात है कि उनका प्रतिद्वन्द्वी उनसे कमजोर न्यून शक्तिवाला स्वल्प तपस्वी हो, तो उनका शाप काम का है अन्यथा वे स्वतः प्रबल को शाप देते भी नहीं और वह सफल होता भी नहीं।

बस, यही बात मन्त्र में भी है—सप्तशती की, जो महा-माया भगवती आदि-शक्ति का मन्त्र-मय कोष है, उसे कौन शाप दे सकता है! इस कथनोपकथन से सहयोग करता हुआ 'श्रीसप्तशती-सर्वस्व' भी यही समझा रहा है। इसमें सप्तशती के शाप और उसके उद्धार की बात कही है, पर किसी विशेष प्रधान नाम का निर्देश न करते हुए—'तन्त्रे यथा' कहकर शाप का उद्धार-क्रम लिखा है। जैसे—अन्सा १३ घा १ र्क १२ द्वि २ रुद्र ११ त्रि ३ दिग् १० अब्ध्यं ४ के ९ ष्वि ५ भ ८ र्तव: ६ अश्वो ७ श्व ७ इति सर्गाणां शापो क्रमो मनोः क्रमः इति।

यह उद्धार मान्य इसलिये नहीं है कि पहले इसका शाप बताना योग्य था। फिर उद्धार बतलाना चाहिये था, वह नहीं बताया है। मूल में सर्ग लिखा है, सप्तशती में सर्ग है नहीं, वहाँ तो अध्याय है। न जाने कहाँ का प्रकार है। पर असगंत-सा ही है, मूल ही नहीं तो शाखा कहाँ से! अन्त में उत्कीलन की बात लिखी है, वह हम उत्कीलन का वर्णन करते समय लिखेंगे। अन्त में सप्तशती-सर्वस्वकार ने स्पष्ट लिख दिया है कि—'एतस्मादपि शापोद्धारादिकं नावश्यकमिति प्रतिभाति' अर्थात् इत्यादि कारणों से सप्तशती के शापोद्धार आदि आवश्यक प्रतीत नहीं होते हैं। आदि शब्द से संजीवनादि समझिये।

अब एक और प्रमाण देना शेष है—'देवी-रहस्य' में, जो रुद्र-यामल से ही संग्रहीत है, प्रायः मन्त्रों को देवों को भी शाप होने की बात कहकर शापोद्धार के मन्त्र वर्णित किये हैं। पर वहाँ भी शाप के कारण तो कतई नहीं बतलाये हैं, और शाप के रूप भी नहीं बताये हैं। शाप-मोचन केवल बतलाये हैं—बाला, भैरवी, त्रिपुरा, त्रिपुरसुन्दरी आदि महा-विद्या और विद्याओं तथा शिवों, गणपतियों, भैरव और विष्णु रामादि देवों के भी शाप-मोचन मन्त्र दिये हैं। उनमें, खूब बार-बार ध्यानपूर्वक पढ़ने पर भी सप्तशती के शाप होने का और उसके उद्धार का मन्त्र कोई नहीं मिल रहा है, और वर्तमान में सप्तशती पुस्तकों में जो शाप-मोचन मन्त्र है, वह भी अविकल नहीं मिलता है अर्थात सप्तशती के नाम से नहीं मिलता है, वैसे 'ह्रीं श्रीं क्लीं' ये बीज तो अस्त-व्यस्त कहीं भी मिलते हैं—इससे क्या!

सप्तशती के शाप के बिषय में यह तथ्य बात, जो अनुभव एवं आगम-विमर्ष से तथा गुरुवरों के उपदेश से प्राप्त हुई, यथार्थ लिखकर आपकी सेवा में प्रस्तुत की है। इससे यदि आपका कुछ भी मनः-सन्तोष हुआ, तो निज परिश्रम सफल समझूँगा।

॥ बोलो श्री जगदम्बा की जय।

शाप-मोचन-सम्बन्धी जिज्ञासा का समाधान

आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री

अहमेव वात इव प्रमाण्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।। परो दिवा परा एना पृथिव्यै ।।

इस रूप से ऋग्वेद ने जिस सर्वोपरि महा-शक्ति के ताटस्थ्य-लक्षण के प्रतिपादन द्वारा महा-मातृ-शक्ति के महत् रूप को प्रकाशित करने का प्रयत्न आदि ऐतिहासिक काल में किया था, उस जगज्जननी जगदम्बा के सर्व-श्रेष्ठ स्तव 'सप्तशती स्तव'—के प्रयोग वा पुरश्चरण के माध्यम से हम किस प्रकार अपने अभीष्ट भुक्ति-मुक्ति आदि फलों को प्राप्त कर सकते हैं, इस सम्बन्ध में संस्कृत वाङ्मय में आगम तथा तन्त्र-ग्रन्थों के रूप में अपार साहित्य उपलब्ध होता है, जिनका यथा-तथ्येन अध्ययन तो दूर रहा, नाम-निर्देश भी मेरे जैसे पल्लव-ग्राहि पाण्डित्यवाले मानव के लिए सर्वथा असम्भव ही है।

कहना न होगा कि सप्तशती की पोथियों एवं उपासना-प्रकारों के सम्बन्ध में यह प्रवाद है ही कि जितनी पोथी, उतने ही पाठ-भेद और जितने ही पाठक, उतने ही उपासना-प्रकार हैं। फिर, केवल मिथिला में ही मैंने अपनी आँखों अनेकानेक प्रकार-भेद देखे हैं।

सप्तशती-सर्वस्व, दुर्गोपासना-कल्पद्रुम, शत-चण्डी विधान, चण्डी-पूजा-पद्धति, चण्डी-पाठ-प्रकार आदि अनेकानेक मुद्रित एवं अमुद्रित ग्रन्थों में तथा कात्यायनी तन्त्र, महा-काल संहिता, देवी-यामल आदि प्राचीन तन्त्र-ग्रन्थों में भी प्रकार-भेद स्पष्ट उपलब्ध हैं। तब फिर उनमें एक को मान्य एवं एक को अमान्य बतलाने की अपेक्षा, मेरे विचार से उनमें प्रत्येक को ही क्षेत्रिय साधना-प्रकार मान कर उन-उन क्षेत्रों में अनुष्ठेय मानना अधिक शास्त्र-सम्मत होगा।

इसमें—"स्मृतीनां प्रामाण्यं महाजन-परिग्रहादेवावलीयते"— महा-महोपाध्याय वाचस्पति मिश्र के इस रहस्योद्घोषण से भी समन्वय होता है और सभी आगम ग्रन्थों से एवं साधक-परम्परा से प्राप्त प्रकारों की समान रूप से मान्यता भी अक्षुण्ण रह जाती है। इसी पृष्ठभूमि पर मैं नीचे शापोद्धार-सम्बन्धी प्रश्न का समाधान करना वांछनीय मानता हूँ—

दुर्गा सप्तशती पाठ के आदि में ही शापोद्धार, उत्कीलन बीज-मन्त्र के पाठ का क्रम है। यथा—शापोद्धार सात बार, उत्कीलन इक्कीस बार।

अनेक साधकों का कहना है कि अम्बा जगज्जननी आदि-शक्ति है; ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्रादिकों की क्या सामर्थ्य है कि उसे शाप दें। फलतः जहाँ शत व सहस्र-चण्डी होती है, कोई शापोद्धार-उत्कीलन करते हैं और कोई नही करते हैं। क्या यह ठीक है ?

शापोद्धार एवं उत्कीलन का शास्त्र-सिद्ध रहने के कारण अपना महत्व है ही, जिसमें ब्रह्मादिकों का सामर्थ्य जाँचना 'अमृतस्य पुत्र' मातृ भक्त-साधकों के लिए वांच्छनीय नहीं माना जा सकता।

हम यह देखते हैं कि ये शापोद्धार और उत्कीलन के मन्त्र हमें वह आत्म-गौरव प्रदर्शित करते हैं, जिसमें स्पष्ट है कि हम यदि जगज्जननी जगदम्बा की आराधना तन्मयतापूर्वक करें, तो अवश्य वह आशु-तोषिणी मां हमारे सभी बाल-अभिलषितों को मानेगी—महत्व देगी। ऐसी स्थिति में लोक-वेद उभय दृष्टि से उसका जप आवश्यक ही नहीं, अवश्य विधेय है।

शत-चण्डी वा सहस्र-चण्डी में प्रत्येक बार सप्तशती के पाठ के साथ उन्हें पढ़ना आवश्यक नहीं है, केवल ऋष्यादि न्यास प्रतिदिन आरम्भ में एक बार जिस प्रकार किया जाता है, उसी प्रकार इन सबका भी पाठ-जप उचित है। एक बार वृद्धि पाठ के अवसर पर मेरे द्वारा यह प्रश्न उठाने पर मेरे पितामह महा-महोपाध्याय लालजी झा ने प्रतिदिन एक बार ही उन्हें करने का उपदेश दिया था, और उस अनुष्ठान में अभीष्ट सिद्धि भी पूर्णतः प्राप्त हुई थी। इसलिए मेरे विचार में, एक बार वह करना शास्त्र-सम्मत एवं सदाचार-सम्मत दोनों ही है। सर्वथा परित्याग करना अशास्त्रीय होने से कथमपि आचरणीय नहीं। मीमांसा के प्रकारों से भी यही मार्ग प्रशस्त होता है।

सप्तशती का पाठ

यथाऽश्वमेधः क्रतुराड् देवानाञ्च यथा हरिः। स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशती-स्तवः ।।
अथवा बहुनोक्तेन किमनेन वरानने ! चण्डचा शतावृत्ति-पाठात् सर्वा सिद्धयन्ति सिद्धयः ।।

अर्थात् जैसे यज्ञों में अश्वमेध, देवताओं में पर-ब्रह्म, हरि-नारायण श्रेष्ठ हैं, वैसे ही स्तोत्रों में सप्तशती प्रधान है। अधिक क्या कहा जाय, इस सप्तशती का सौ बार पाठ करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।—वाराही तन्त्र

सप्तशती-पाठ की विधि के सम्बन्ध में 'वाराही-तन्त्र' में इस प्रकार कहा है—

आधारे स्थापयित्वा च पुस्तकं वाचयेत् स्फुटम्। हस्ते संस्थापनादेव हरत्यर्ध-फलं यतः ।।
यावन्न पूर्यतेरध्यायस्तावन्न विरमेत् पठन्। अनुक्रमात् पठेद्देवि ! शिरः-कम्पादिकं त्यजेत् ।।
यदि प्रमादादध्याय-मध्ये च विरमेत् प्रिये ! पुनरध्यायमारभ्य पठेत् सर्व-स्तवे विधिः ।।
नातः पर-तरं स्तोत्रं किञ्चिदस्ति वरानने ! भुक्ति-मुक्ति-प्रदं पुण्यं पावनानाञ्च पावनं ।।

अर्थात् 'सप्तशती-पाठ' पुस्तक को आधार पर रखकर पाठ करे। हाथ में पुस्तक रखकर पाठ करने से, आधा ही फल मिलता है। जब तक अध्याय पूरा न हो जाय, बराबर पाठ करता जाय। पाठ करते समय बीच में रुके नहीं। यदि प्रमाद से अध्याय की समाप्ति के पहले ही रुकना पड़े, तो पुनः अध्याय के प्रारम्भ से धीरे-धीरे पाठ करे। पाठ धीरे-धीरे क्रम से करे और पाठ करते समय शिर आदि न हिलावे। हे पार्वती, इस स्तव से बढ़कर भुक्ति-मुक्ति-प्रद तथा पवित्र से पवित्र कोई दूसरा स्तोत्र नहीं है।

'महाकाल-संहिता' में लिखा है - ब्राह्मणों का वरण कर, वस्त्र, आसन आदि उन्हें प्रदान कर, यजमान मनोकामना का उल्लेख करके पुस्तक का पूजन करे। पाठ करनेवाला वर्णों का उच्चारण कर धीरे-धीरे पाठ करे। स्पष्ट उच्चारण-पूर्वक पाठ करे। पाठ करते समय शरीर को न हिलावे, न हँसे, न रोवे, न चले-फिरे, न खाए-पिये, न बातचीत करे और न बीच में पाठ का क्रम भङ्ग करे। इस विधि से पाठ करने से जगदम्बा सन्तुष्ट होती हैं और वह जैसा लिखा है, वैसा ही फल प्रदान करती हैं।

'देवी-पुराण' में लिखा है—पाठ करनेवाले की भले प्रकार पूजा करके सप्तशती का पाठ करावे। इस विधि से जो पाठ करवाता है तथा सुनता है अथवा चिन्तन करता है, उसे एक हजार वाजपेय और सौ अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, उससे सौ गुना अधिक फल प्राप्त होता है।

'मरोच-कल्प' में लिखा है—आदि में 'रात्रि-सूक्त' का पाठ करे, बीच में 'सप्तशती-स्तव' का पाठ करे और अन्त में 'देवी-सूक्त' का पाठ करे। इस प्रकार सम्पुटित स्तोत्र-पाठ से सब कामनाओं की सिद्धि तथा अर्थ की प्राप्ति होती है। यहाँ 'रात्रि-सूक्त'—'त्वं स्वाहा त्वं स्वधा' आदि प्रथम चरित की स्तुति है और 'देवी-सूक्त'—'नमो देव्यै' आदि तृतीय चरित की स्तुति है। यह नागो जी भट्ट आदि का मत है। दूसरे आचार्य वैदिक-सूक्त को मानते हैं।

'मेरु-तन्त्र' में लिखा है कि दीक्षा-प्राप्त साधक 'सप्तशती-स्तव' को 'नवार्ण मन्त्र' से पुटित करके पाठ करें।

शीघ्र फल देनेवाले--

'सप्तशती-पारायण' का महत्त्व

श्रीविद्या-मार्तण्ड श्री सामो शास्त्री

इस कलि-युग में शीघ्र फल देनेवाला यदि कोई पारायण है, तो वह है 'सप्तशती'-पारायण। श्रीगुरु-नाथ के मुख द्वारा 'नवाक्षरी मन्त्र' का उपदेश पाकर और पारायण-क्रम को भी अच्छी तरह जानकर, विश्वास के साथ यदि साधक पारायण करे, तो बिना संदेह के मनोकामना पूरी हो जायगी। 'सप्तशती-पारायण' तो असि-धारा-व्रत के समान है।

लक्ष्मी-तन्त्र, कात्यायनी-तन्त्र, मरीचि-कल्प, चिदम्बर-तन्त्र, वाराही तन्त्र आदि तन्त्रों में 'सप्तशती मन्त्र' का विवरण दिया गया है। मन्त्र-विवरण तथा पारायण-क्रम में थोड़ा-बहुत भेद दीख पड़ता है। इसलिये तन्त्रों को देखकर हम स्वयं पारायण नहीं कर सकते क्योंकि कई संदेह उत्पन्न हो जाते हैं। प्रत्येक प्रदेश तथा परम्परा में भी पारायण-क्रम भिन्न-भिन्न मिलता है। कुछ प्रदेशों में कुछ तन्त्रों को प्रधान मानकर, कुछ परम्पराओं के अनुसार पारायण किया जाता है। तथापि पारायण जैसा भी हो, सप्तशती में कोई परिवर्तन नहीं मिलता। विश्वास ही प्रधान है।

इसलिये अनेक तन्त्रों को जाननेवाले पण्डित लोग पारायण का जो क्रम बताते हैं, उस पर विश्वास रखकर उसका अनुकरण करे, तो फल अवश्य मिलेगा। इस तरह विश्वास रखकर जिन महानुभावों ने 'सप्तशती का पारायण' किया है, उनके तथा अपने कुछ अनुभवों को 'चण्डी' के पाठकों के सन्तोष के लिये नीचे देता हूँ।

केरल देश में यक्षिणी के रहने का एक ताड़-वन है, जहाँ रात के प्रथम याम के बाद कोई नहीं जा सकता। एक बार दो केरल ब्राह्मण रात के प्रथम याम के बाद उसी मार्ग पर आ निकले। उनमें से एक 'सप्तशती-पारायण' करनेवाले थे। इसके अतिरिक्त वे जहाँ भी जाते, अपने साथ सप्तशती-ग्रन्थ भी ले जाते थे। जिस समय ये दोनों ताड़-वन में से होकर जा रहे थे, उसी समय दो अति रूप-वती स्त्रियों ने आकर उनसे कहा—यक्षिणियों के इस वन में से आप रात के समय नहीं जा सकते, क्योंकि आपको यक्षिणियों से कोई हानि हो जायगी। यहाँ रात काट कर सुबह विदा ले लीजियेगा।

यह सुनते ही दोनों के मन में वासना-रूपी तरंगें उमड़ पड़ीं और वे उन यक्षिणियों के पीछे जाने लगे। जाते-जाते सप्तशती-ग्रन्थ जिस ब्राह्मण के हाथ में था, उसके मुंह पर सन्देह की रेखायें उभर आईं। उन्हें देखते ही सुन्दरियाँ कहने लगीं—सन्देह की कोई बात नहीं, आपकी भलाई के लिये ही हम कहती हैं। आप दोनों रात भर हमारे साथ सुख से रहें, फिर सबेरे चले जाइयेगा।

इस पर वे दोनों वासना-मुग्ध होकर उनके साथ अलग-अलग कमरों में गए, जहाँ उन यक्षिणियों ने संकेत किया। उस समय सप्तशती-ग्रन्थ जिस ब्राह्मण के हाथ में था, उससे सुन्दरी ने कहा—आपके हाथ में क्या है? उसे एक ओर रख दीजिये। इस बात को सुनते ही उस ब्राह्मण का सन्देह और भी बढ़ गया और उसने कहा—'यह सप्तशती-ग्रन्थ है और मैं इसे कभी नहीं छोड़ूंगा।'

सुन्दरी ने कहा—सप्तशती-ग्रन्थ को हाथ में लेकर आप अपनी वासना की पूर्ति कैसे कर सकते हैं? इसलिये उसे नीचे रख लीजिये।

इस तरह जब ये दोनों चर्चा कर ही रहे थे, तभी दूसरे कमरे में से भयङ्कर आवाज तथा हड्डियों के टूटने का शब्द सुनाई पड़ा। इसे सुनते ही उस ब्राह्मण ने सप्तशती-ग्रन्थ को दृढ़ता से पकड़ कर 'चण्डी देवी' की प्रार्थना की। तब जहाँ सुन्दरी स्त्री थी, वहाँ अति-घोर-रूप में एक देवता को बैठे हुए उसने देखा। डर के मारे वह ब्राह्मण आँखों को बन्द करके और भी आर्त-भाव से देवी की प्रार्थना करने लगा। कुछ देर के बाद जब उसने आँखें खोलीं, तब उसे मालूम हुआ कि वह ताड़-वृक्ष के ऊपर है। उसके सामने और कोई नहीं था। मारे डर के उसका शरीर काँपने लगा और वृक्ष की डाल को अच्छी तरह पकड़कर सूर्योदय तक वहीं पर बैठा रहा।

सबेरे जब किसान-मजदूर लोग उस राह से निकले, तब ब्राह्मण ने बुलाकर उन लोगों को अपनी सारी कहानी कह सुनाई। उन लोगों ने उस ब्राह्मण को वृक्ष से उतारा और पूछा——दूसरा ब्राह्मण कहाँ है?

इस पर उसने उन्हें दूसरे ब्राह्मण की हड्डियों को दिखाया और कहा——मेरे हाथ में यह 'सप्तशती'-ग्रन्थ होने कारण ही मेरी जान बच गयी।

सुनते ही लोग देवी की महिमा तथा उस ग्रन्थ की प्रशंसा करते-करते चले गये। इस वृत्तान्त से सप्तशती के अलौकिक प्रभाव प्रकट होता है। वैसे तो उसकी महिमा के बारे में कौन बता सकता है? यह तो सदियों से सुनी-कही जानेवाली एक कथा है।

अब मैं अपने अनुभव को बताता हूँ। मद्रास में एक मङ्गलूर-वासी की पत्नी नसों की बीमारी के कारण अस्वस्थ थी और कई तरह की चिकित्सा करने पर भी उसकी बीमारी जैसी-की-तैसी ही बनी थी। वे श्री रामकृष्ण-मठ पर विश्वास रखनेवाले दम्पति थे। इसलिये उन्होंने श्री रामकृष्ण-मठ जाकर अपनी पत्नी की सारी हालत बताकर, उसके लिये परिहार पूछा। इतने में एक संन्यासी ने कहा——'सप्तशती का पारायण' करने से रोग का निवारण होगा।

उसी संन्यासी से पारायण का प्रबन्ध करने को कहकर वे चले आए। उस बङ्गाली संन्यासी ने भी मेरे मित्र के द्वारा मुझे वहाँ ले जाकर 'सप्तशती-पारायण' करने का प्रबन्ध किया। मैं भी श्रीगुरु के उपदेश के अनुसार पारायण कर आने लगा। इस तरह पारायण करते-करते एक दिन पारायण के बीच में मुझे एक भयङ्कर रूप दिखाई पड़ा। उसके बाल बिखरे हुए थे, आँखें लाल थीं, रङ्ग काला था और वह बहुत नाटा था। उस रूप ने कहा—तुम क्या पारायण करते हो! देखो, तुम्हारा मैं क्या करता हूँ!

तुरन्त ही मैंने कहा——तुम अपने काम पर अटल रहो और मैं अपने काम पर डटा रहूँगा।

यह कहकर ज्वाला-मालिनी मन्त्र का दस बार जप कर 'सर्वा बाधा प्रशमनम्' का सम्पुटीकरण करके मैंने 'सप्तशती का पारायण' किया। थोड़े ही दिनों में वह स्त्री स्वस्थ हो गई और आज भी वह सुख से रहती है।

दूसरी बार की बात है कि एक गुजराती सज्जन एक मुकदमे में फँस गये थे। श्री जगद्गुरु श्री ११०८ श्री शङ्कराचार्य महाराज (श्री योगेश्वरानन्द तीर्थ स्वामी जी) गोवर्धन-मठ, पुरी के शिष्य मेरे मित्र डाक्टर आर० बी० दवे के द्वारा छुटकारा पाने के लिए उनके प्रार्थना करने पर श्री आचार्य स्वामीजी ने मेरे उस डाक्टर मित्र द्वारा मुझसे ही सप्तशती-पारायण 'सर्वा बाधा सुघोरा' के सम्पुट से किये जाने का प्रबन्ध किया। चार दिन में पारायण समाप्त कर पाँचवें दिन दशांश होम की पूर्णाहुति के पूर्ण होने के समय के अन्दर ही वे गुजराती बन्धु भी मुकदमे से पूर्णतया छुटकारा पा गए। इस तरह के अनुभव को अनेक बातें हैं। किन्तु उनका यदि मैं वर्णन करूँ, तो डींग मारनेवाला बन जाऊँगा। इससे मैं उपसंहार करता हूँ।

'चंडी' के पाठकों से मेरी यही विनम्र प्रार्थना है कि सप्तशती के सम्बन्ध में अनेक सन्देह पूछे जाते हैं मगर सप्तशती के लिये सन्देह की कोई आवश्यकता ही नही है। श्री सद्गुरु के मुख के द्वारा नवाक्षरी मन्त्र का उपदेश पाकर पारायण-क्रम को भले प्रकार जानकर, उस पर विश्वास रखकर, पारायण करने से मनोकामना और आकांक्षा के पूरी होने में कोई सन्देह नहीं, और कोई पूछ-ताछ करने की भी बात नहीं है। हर एक देश के आचार-विचार में भेद अवश्य होगा। इसलिये हम बिना संशय के अपने देश के आचार-विचार को अपनाकर श्रीदेवी की कृपा पाने का यत्न करें।

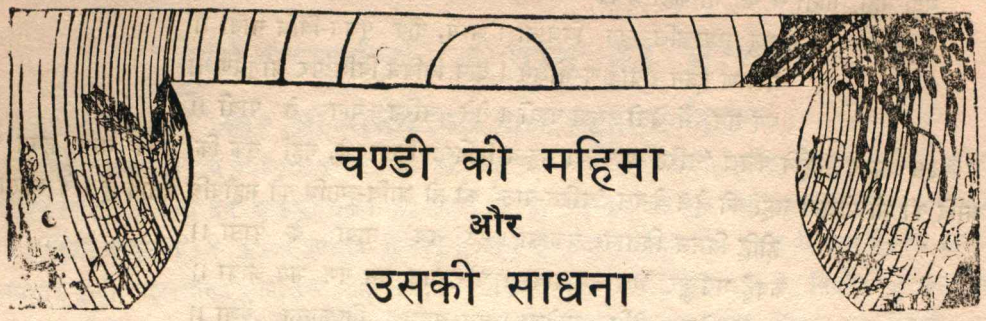

चण्डी की महिमा और उसकी साधना

'कौल-कल्पतरु' स्व० पं० देवीदत्त जी शुक्ल

'चण्डी' (श्री दुर्गा सप्तशती) के पाठ से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि चारों साधनों की सिद्धि अनायास ही प्राप्त हो जाती है। इसी से इस पवित्रतम पुस्तक का आज भी, इस धर्म-ग्लानि के युग में, देश के सभी भागों में सदा की भाँति प्रचलन है।

'चण्डी' को 'दुर्गा' भी कहते हैं। इसका एक नाम 'सप्तशती' भी है। यह "मार्कण्डेय पुराण" का एक विशिष्ट अंश है। इसमें जगदम्बा के दिव्य चरितों का १३ अध्यायों में वर्णन किया गया है, जो अत्यन्त ही मनोहर तथा आशा-प्रद है। साधक लोग इसे वेद-वत् पूज्य मानते हैं और इसका नित्य स्वाध्याय करते हैं।

चारों वर्ण के हिन्दू कम-से-कम वर्ष में दो अवसरों पर तो 'चण्डी' की शरण लेते ही हैं। देखा गया है, नवरात्र के अवसर पर सभी लोग अपने आचार्य आदि के द्वारा 'चण्डी' का पाठ, इस उद्देश्य से करवाते हैं कि वे क्लेश से बचे रहें और उनका कल्याण होता रहे। सङ्कट आ पड़ने पर तो 'चण्डी' की शरण ली ही जाती है और सङ्कट के आकार-प्रकार के अनुसार 'चण्डी'-पाठ का अनुष्ठान भी किया जाता है। आस्तिक घरों में तो यहाँ तक है कि 'चण्डी' की पोथी की भी नित्य पूजा होती है और नवजात शिशु के सिरहाने वह इसलिये रक्खी जाती है कि उसकी सभी तरह से रक्षा होगी। वस्तुतः 'चण्डी' की ऐसी ही महिमा है; और क्या पढ़े-लिखे और क्या निरक्षर—दोनों ही अवसर पर 'चण्डी' की शरण लेते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'चण्डी' की उपर्युक्त व्यापक लोक-प्रियता के कारण उसकी साधना जटिल-से-जटिलतर हो गई है। 'चण्डी' के स्वाध्याय अर्थात् पाठ की कई विधियाँ प्रचलित हो गई हैं, जिसके फल-स्वरूप साधारण लोग उसका उस रूप में उपयोग नहीं कर पाते, जिस रूप में करना चाहिये। भक्त-जन 'चण्डी' का सम्यक् रूप से अनुष्ठान करने से डरते हैं।

इधर स्वयं 'चण्डी' के १२ वें अध्याय में जगदम्बा ने अपने श्रीमुख से जो आदेश किया है, वह तो बहुत ही सरल और सु-साध्य है। माता कहती हैं—

यह बिनती मम जो मन लाई। करिहैं तेहि आनन्द सदाई॥
तेहि की सब बाधा मैं हरिहौं। निश्चय अभय सुखी जन करिहौं॥

और उनकी वह बिनती, कौन सी है; इसको भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया है। वे कहती हैं—

जो नर मधु-कैटभ कर नासा। महिषासुर मारन इतिहासा॥
शुम्भ-निशुम्भ केर अवसाना। पढ़िहै शान्त चित्त धरि ध्याना॥

इस प्रकार जगदम्बा ने स्पष्ट कह दिया है कि 'चण्डी' के अन्तर्गत उनके जो तीन चरित हैं, उन्हीं का ध्यान-पूर्वक पाठ किया जाय। उन्होंने यह भी कहा है—

धन्य सो गृह नित पाठ सुखारी। बसहुँ तहाँ मैं हरि भय भारी॥

यही नहीं, माता ने यह भी कहा है कि --

पशु पुष्पाञ्जलि धूप विधाना । अर्घ्य, दीप पूजन-विधि नाना ।।
प्रोक्षण हवन सुब्राह्मण-भोजन । दान विविध विधि पर आभूषण ।।
इन सन में जेतो सुख पावौं । तेते चरित गान ते पावौं ।।

इस प्रकार उन्होंने केवल 'चरित'-पाठ का महत्व निर्दिष्ट किया है, यहाँ तक कि उसके साथ हवन या बलि-विधान आदि की भी योजना नहीं की है । केवल 'चरित-पाठ' को ही आधि-व्याधि की महौषधि बताई है । वे कहती हैं--

होहि विमल विज्ञान प्रकासा । टूटै सब माया के पासा ।।
कबहुँ भयङ्कर थल बन दावा । चोर दाब बन गण भय आवा ।।
क्रुद्ध नरेश देहि आदेशा । बध-आज्ञा निष्कासन देशा ।।
अथवा देवै कारागारा । जल-मधि संकट परै अपारा ।.
शस्त्र-विकल भीषण संग्रामा । अथवा कोउ आपति उद्दामा ।।
सुमिरत चरित मिटैं सब शूला । होहि सकल बाधा निर्मूला ।।

और संसार के प्राणी इन सब कष्टों के आखेट (शिकार) रहते ही हैं । ऐसी दशा में जगदम्बा के इन वचनों के कारण ही लोग 'चण्डी' की शरण लेते हैं । तदनुसार उन्हें मनोवाञ्छित फल भी मिलता है ।

उपर्युक्त कथन से हमारा यह आशय नहीं है कि 'चण्डी'-पाठ की जो अन्य प्रक्रियायें हैं, वे ठीक नहीं हैं । वस्तुतः वे सभी प्रक्रियायें महत्व-पूर्ण हैं और वे सिद्ध-महात्माओं द्वारा ही निर्दिष्ट की गई हैं । स्वयं 'चण्डी' में ही लिखा है कि सुरथ और समाधि ने 'देवी-सूक्त' का जप करके श्रीजगदम्बा को प्रसन्न किया था, जिससे सिद्ध होता है कि माता को प्रसन्न करने के लिये भाँति-भाँति के साधन निश्चित हैं और निर्दिष्ट हैं तथा वे सभी मान्य हैं ।

ऊपर की बात लिखने का हमारा मतलब यह है कि केवल 'चरित-त्रय' के पाठ से भी सभी मनोकामनाओं की सिद्धि होती है । स्वयं भगवती ने ही अपने श्रीमुख से सप्तशती के बारहवें अध्याय में इस "दिव्य पाठ-क्रम" को निर्दिष्ट कर दिया है । अतः श्री जगदम्बा के वचनों में अटूट श्रद्धा रखते हुए, भक्त-जन केवल तेरह अध्यायों का पाठ करते हुए मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर सकते हैं ।

भगवती की उक्तियों से 'चण्डी'-पाठ के सम्बन्ध में यह भी क्रम ज्ञात होता है कि यदि तेरह अध्यायों का नित्य पाठ करना सम्भव न हो, तो कम-से-कम अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी के तीन दिनों में सम्पूर्ण चरित का पाठ करे । सम्पूर्ण चरित का पाठ एक दिन में करना जिनके लिए सम्भव न हो, वे चण्डी के अन्दर आई हुई स्तुतियों का ही पाठ करके लाभ उठा सकते हैं । "दिव्य पाठ-क्रम' के अन्तर्गत एक अत्यन्त सक्षिप्त क्रम 'चण्डी' के सात चुने हुए श्लोकों के पाठ करने का है । ये श्लोक 'सप्त-श्लोकी चण्डी' के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

'दुर्गा-सप्तशती' के पाठ की महिमा

स्व० श्री राजेन्द्रलाल दास, सहरसा, बिहार

"दुर्गा सप्तशती" में देवी-चरित एवं देवी का माहात्म्य वर्णित है। इसके श्लोक केवल श्लोक ही नहीं वरन् मन्त्र हैं। इन श्लोकों के द्वारा सब कुछ हो सकता है, सकता ही नहीं अपितु होता है। सब प्रकार के सङ्कट निवृत्त होते हैं।

"दुर्गा सप्तशती" के १२ वें अध्याय में देवी ने स्वयं ही इसकी महिमा के वर्णन में कहा है कि इसके पाठ से सारी बाधा दूर होगी, पाप-जनित आपत्तियाँ नहीं आयेंगी, दरिद्रता नहीं होगी, प्रेमी-जनों के बिछोह का कष्ट नहीं होगा, शत्रुओं से, लुटेरों से, राजा से, अस्त्र-शस्त्र से, अग्नि से, जल-राशि से कभी भय नहीं होगा। आध्यात्मिक आदि तीनों प्रकार के उत्पात शान्त होते हैं। धन-धान्य, पुत्र आदि से सम्पन्न होता है। ग्रह, नक्षत्र आदि की पीड़ा दूर होती है— आरोग्य प्रदान करता है। तात्पर्य यह कि सुख के लिए पाठ कीजिए या कराइए, सुख प्राप्त होगा ही, आपत्ति की निवृत्ति के लिए पाठ कीजिए वा कराइए आपत्ति का नाश होगा ही। यहाँ मैं दुर्गा-पाठ-सम्बन्धी कुछ अपने अनुभव लिखता हूँ।

सन् १९१५ या १६ की बात है। मेरी उम्र ८-९ वर्ष की रही होगी। एक दिन मेरी बाईं जङ्घा में दर्द उठा और वह बढ़ता ही गया। पिता जी कहते कि 'स्कूल में सीढ़ी पर फिसलने से चोट लगी है या हड्डी टूट गयी है।' तेल आदि से बराबर मालिश की जाती किन्तु दर्द में कमी न हुई। टूटी हड्डी को मालिश कर ठीक करनेवाले अनेक झाड़-फूंक करनेवाले पहुँचने लगे, किन्तु किसी की न चली। दर्द के मारे शरीर काला पड़ गया। अन्त में सुपौल (जिला सहरसा, बिहार) अस्पताल के डाक्टर असिस्टेण्ट सर्जन श्री सुकुमार गुप्त बुलाये गये। उन्होंने देखते ही कहा कि 'इसमें 'पस' पड़ गई है और भीतर-ही-भीतर सड़ रहा है। अगर दो-तीन दिन के अन्दर आपरेशन नहीं होगा, तो यह बचेगा नहीं।' आपरेशन का नाम सुनते ही सब डर गये।

गाँव और पास-पड़ोस के छोटे-बड़े सभी व्यक्ति का सहानुभूति के लिए ताँता बँध गया। डाक्टर ने कहा— 'बहुत सीरियस है। क्लोरोफार्म करना होगा।' उन दिनों चीर-फाड़ का इतना विकास नहीं था। डाक्टर भी सशङ्क थे। जान का डर था। अस्पताल ले जाकर चिराना ठीक नहीं समझा गया। अस्पताल के डाक्टर और चिकित्सा-विभाग के जितने कर्मचारी थे, सबके सब आये। केवल अनुभव से चिकित्सा करनेवाले गाँव के ग्रामीण डाक्टर जो भी थे, सबको बुलाया गया। सुना कि घर के और बाहरवाले सबके सब आपरेशन के समय रो रहे थे। जान दाँव पर थी। बाद में भी डाक्टर को घाव बढ़ने का डर था। डाक्टर स्वयं ही ड्रेसर के साथ घाव धोकर पट्टी बाँधने के लिए आते थे।

दुर्गति-नाशिनी, दुःख-विनाशिनी मां भगवती दुर्गा की शरण ली गई। श्री बबुआ झा, ज्योतिषी—

'रोगानशेष पहंसि तुष्टा रुष्टा तु कमान् सकलनभीप्टान्' इत्यादि

मन्त्र से "दुर्गा सप्तशती" का सम्पुट-पाठ करने लगे। नवावृत्ति का सङ्कल्प था। पूरा स्मरण तो नहीं है, किन्तु कई दिन सम्पुट-पाठ होने के बाद डाक्टर को कुछ आशा झलकी। सम्पुट पूर्ण होते-होते डाक्टर को पूरी आशा हो गयी। जान बचने की आशा कम थी। हम सभी को दृढ़ विश्वास जम गया कि केवल 'दुर्गा-पाठ' ही से रोग शान्त हुआ और जान बच सकी। मुझे भी उसी बचपन से 'दुर्गा-पाठ' में निष्ठा जागृत हुई। यह 'रोगानशेषान०' मन्त्र उसी समय मुझे कण्ठाग्र कराया गया था।

सन् १९५० ई० की बात है। मेरे ६-७ वर्ष के दूसरे लड़के गोपाल जी को मियादी ज्वर हो गया, ताप-मान बहुत अधिक जाने लगा। एक साधारण ग्रामीण डाक्टर से चिकित्सा हो रही थी। कुछ दिन के बाद उन्होंने कहा कि— 'भयानक सन्निपातिक ज्वर हो गया है।' सबके सब घबड़ा गये। जान बचने की कम ही आशा दिखाई पड़ने लगी। मुझे तो माँ के चरण-शरण के सिवाय दूसरा कोई चारा नहीं दिखा। अपने पुरोहित को बुलाया, नवावृत्ति 'दुर्गा-सप्तशती'-

पाठ सङ्कल्प दिया। प्रतिदिन एक आवृत्ति पाठ होता था। पाठ के दो दिन बाद ही उसकी हालत सुधरने लगी। पाठ सम्पूर्ण होते-होते हालत बिल्कुल सुधर गयी और पाठ सम्पूर्ण होने के प्रायः दो दिन बाद ही पथ्य दिया गया। भला-चङ्गा हो गया।

मेरे छोटे भाई गजेन्द्रलाल दास को बहुत दिनों तक कोई सन्तान नहीं हुई थी। बहुत मनौती मानने पर एक लड़की हुई। नाम पड़ा मंजू। चिरंजीवी मन्जू सबकी बहुत दुलारी थी। ५ वर्ष की उम्र में प्रायः १९५३ ई० में वह बहुत बीमार रहने लगी, हम लोग उसके जीवन से निराश हो रहे थे। मुझे तो माँ की शरण, 'दुर्गा-सप्तशती' पाठ में पूर्ण विश्वास था। एक योग्य पण्डित मिल गये। किन्तु वे सहरसा में एक धनिक के यहाँ पाठ-पुरश्चरण के लिए नियुक्त थे। उनसे 'दुर्गा-सप्तशती' नौ आवृत्ति पाठ करने के लिए निवेदन किया। उन्होंने सलाह दी कि—'एक सम्पुट नौ 'सप्तशती-पाठ' के तुल्य है। एक आवृत्ति सम्पुट ही करवा दीजिये।' मुझे उनकी भी सुविधा देखनी थी। सङ्कल्प ले—"रोगान-शेषानपहंसि तुष्टा" मन्त्र से एक आवृत्ति दुर्गा-सप्तशती पाठ करवा दिया। कुछ ही दिन के बाद उपर्युक्त ग्रामीण डाक्टर की चिकित्सा से ही वह भली-चङ्गी हो गयी।

श्रीचामुण्डा-चालीसा

माँ काली धूमा तुम तारा, देवि छिन्नमस्ता असि-धारा। तुम मातङ्गी त्रिभुवन-सारा, वर्णनीय शुचि-रूप तुम्हारा।
रमा भूतिदा जय जग-पाली, दारिद-नाश-हित कठिन भुजाली। त्रिपुर-सुन्दरी, भैरवि, बाला, भक्तन-हित अति परम कृपाला।
बगला माँ बन विष्णु-स्वरूपा, उद्धारहु भक्तन भव-कूपा। उमा अपर्णा सती भवानी, ब्रह्म-चारिणी शिव-पटरानी।
गौरी हेमवती कूष्माण्डा, काल-रात्रि, षडमातु सु-भाण्डा। कात्यायनी सिद्धिदा माता, नव - दुर्गा नव-रूप प्रदाता।
गरुड़ासना वैष्णवी देवी, गजारूढ़ ऐन्द्री सुर - सेवी। माहेश्वरी वृषभ आरूढ़ा, हरत भक्त की विमति सुगूढ़ा।
श्वेत - रूप - धारी रुद्राणी, हंस - समारूढ़ा ब्रह्माणी। कौमारी तुम शूल-धारिणी, बन त्रिशूल भव-शूल-हारिणी।
शिवा, शाम्भवी काल कालिका, माला-धारी सतत-बालिका। शशि तव कला, मानदा माया, कामाक्षी कामा कमलाया।
कुलेश्वरी कुल-रूप तुम्हारा, सृजत, करत पालन, संहारा। ललित-लता, ललिता लै रूपा, वसुन्धरा वसुदा शिव-रूपा।
पार्वती जय-जय सु-मंगला, हरत सदा अघ ओघ दङ्गला। गुह्येश्वरी कामिका कणदा, आशुतोष-रूपा शुभ फलदा।
धर्म-धारिणी, धर्म हमारा, रक्षक बनकर देहु सहारा। देवि जयन्ती पाप-नाशिनी, यश, वैभव नित नव-प्रकाशिनी।
जयतु भद्र-काली, कपालिनी, जयतु क्षमा, जय मुण्ड-मालिनी। जयतु स्वधा, स्वाहा तव रूपा, चैतन्या सुर-पोष अरूपा।
रक्त-बीज मधु-कैटभ मारे, चण्ड-मुण्ड कर खण्ड विदारे। षड-रिपु दूर करो भव-भामा, सर्व-शत्रु-हर मम, हरि-रामा।
ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तनु-धारी, तुम्हीं मातु गायत्री प्यारी। शाकम्भरी, सुनन्दा, भीमा, रक्त-दन्तिका शक्ति असीमा।
अग्नि, वायु, रवि तत्त्व तुम्हारे, ऋग्-यजु-साम-वेद विस्तारे। करो यशस्वी विनय हमारी, विद्यावंत करो महतारी।
लक्ष्मीवंत करो जगदम्बा, दासन हित नहिं करो विलम्बा। रूप-वानकर दो परमेशी, जरहिं सकल खल-दल, विद्वेषी।
कर कल्याण दया-व्रत-धारी, विनती सुन गिरि-राज-कुमारी। ऐं बीज जो जपत हमेशा, ब्रह्म समान होत सुर-शेषा।
हों वागीश चरण के चेरे, बनें दास सब सिद्ध घनेरे। वागीश्वरी करें उर आसन, पालै सब त्रिभुवन अनुशासन।
शक्ति प्रणव है ह्रीं तुम्हारा, पालन करत सकल संसारा। अंधकार अघ ओघ नसावै, साधक शक्ति-रूप हो जावै।
अष्ट-सिद्धि, नव-निधि नित द्वारे, साधक के गुण-गान उचारे। क्लीं कामना बीज सभी का, चामुण्डा विच्चे पद जी का।
यह नवार्ण जापै जो कोई, हरि हर ब्रह्म सदृश सो होई। गति स्वच्छन्द मुदित 'जगदीशा', संतत हों कृपालु भव ईशा।
चामुण्डा-चालीस जो, नित पढ़ै दै धर ध्यान। कहत जगदीश हैं, करे सकल कल्याण।

—'तन्त्राचार्य' श्री जगदीशशरण बिलगइयाँ 'मधुप', दतिया (म० प्र०)

श्रीजगदम्बा-चालीसा

जननी जगदम्बिका भवानी । त्रिगुण रूप अम्बा महरानी ।
दुर्गा दुर्गति - नाशिनि माता । नाम चण्डिका जग विख्याता ।
बाल-सूर्य सम आनन सोहै । तीन नेत्र त्रिभुवन-मन मोहै ।
ईख धनुष पाशांकुश - धारी । पुष्प-बाण सब विधि भय-हारी ।

दिव्य-केश सिर-मुकुट विराजै । हेम - वलय नासाग्रे साजै ।
कानन-कुण्डल - धुनि मन-हारी । ज्योति-पुंज उर माला धारी ।
रक्त - वस्त्र अरु नाना भूषन । कृपा-मयी माँ हरु मम दूषन ।
सुधा-सिन्धु के मध्य विराजत । कल्प-वृक्ष-वन चहुँ दिशि छाजत ।

चिन्ता-मणि-गृह तहँ पर सोहत । दृश्य अलौकिक मुनि-मन मोहत ।
ब्रह्मा-विष्णु - रुद्र अरु ईशा । सिंहासन पग नाएँ शीशा ।
शिवाकार तव मंच भवानी । पर-ब्रह्म तुम सब गुण खानी ।
अस जो ध्यान करे तव माता । भोग-मोक्ष वह सब कुछ पाता ।

आदि-शक्ति माँ तुम हो काली । मातु तारिणी नागों वाली ।
तुम्हीं तृतीया त्रिपुर - सुन्दरी । कृपा करहु मां हे भुवनेश्वरी ।
तुम्हीं भैरवी तू शिर - हीना । मातु धुमावति जग-वश कीना ।
शत्रु - नाशिनी माँ तू बगला । मातंगी माता तू कमला ।

जगद्-वंद्य हे विन्ध्य - वासिनी । कृष्ण-रक्षिणी कंस - नाशिनी ।
तारक असुर कष्ट बहु दीना । देव सकल मिलि स्तुति कीना ।
प्रकटी हिम-गिरि-गृह तुम बाला । सकल देव तब भये निहाला ।
कार्तिकेय गणपति जनमायो । तीन लोक कर कष्ट नशायो ।

जय जय जय कामाख्या माता । बिनु तव दरश हृदय विलखाता ।
शीघ्र कृपा तुमरी जस होई । नहिं भूमण्डल में अस कोई ।
शरण लेहु मुझको महरानी । तव कीरति गावै मम बानी ।
अन्नपूर्णा माँ जगदम्बा । शाकम्भरी शिवा तू अम्बा ।

मातु शीतला राधा रानी । चरण-कमल बन्दौं दोउ पानी ।
तुम्हीं वैष्णवी अरु रुद्राणी । हंस - वाहिनी माँ इन्द्राणी ।
बाला - रूप जपै जो कोई । सकल सिद्धि करतल-गत होई ।
अद्भुत सिंह - वाहिनी रूपा । क्षमहु अम्ब ! सब मेरी चूका ।

जो कोइ नव दुर्गा को ध्यावै । ताकर जन्म सफल हो जावै ।
ताको तीनि ताप मिटि जावै । जो जननी को शीश झुकावै ।
याद करत अम्बे ! तव नामा । होइ सिद्धि सब जन के कामा ।
दुख दारिद्र सकल मिट जाई । भव-बन्धन ताकर छुटि जाई ।

जग स्थिति पालन लय कारिनि । जय जय जय अम्बे !भय-हारिनि !
स्तुति हरि विरंचि जब कीन्हा । मधु-कैटभहिं प्रान तुम लीन्हा ।
कृपा कियो देवों पर माता । महिषासुर को कीन्ह निपाता ।
चण्ड - मुण्ड बध कीन्हें जबहीं । भयो नाम चामुण्डा तबहीं ।
शुम्भ-निशुम्भ असुर जब मारे । तीन लोक तब भये सुखारे ।
कष्ट पड़े सन्तन पर जब-जब । सगुण रूप होवे माँ तब-तब ।
जय-जय-जय कामेश्वरि माता । अशरण-शरण सकल सुख-दाता ।
'पद्मानन्द' गावै चालीसा । कृपा करहु हे माँ वागीशा !

—पण्डित बेनीमाधव त्रिपाठी, मालाड बम्बई

तेलुगू भाषा में 'चण्डी'

[तेलुगू भाषा में 'चण्डी' पत्रिका का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है। जनवरी ८७ के अङ्क का संक्षिप्त परिचय यहाँ पाठकों के सूचनार्थ प्रस्तुत है । इस परिचय को हमारे अनुरोध पर विद्वद्-वर पण्डित रङ्गनाथ राकेश, मुगलसराय, वाराणसी (उ० प्र०) ने लिखने की कृपा की है, जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।—सं०]

ऊपरी आवरण पृष्ठ पर छपा है—चण्डी (शाक्त मासिक पत्रिका)

सम्पुटि १ : संचिका — १ जनवरी १९८७

सम्पादकुडु : ऋतशील शर्मा — सह-सम्पादकुडु : श्रीराम नरसिंह शर्मा

कुण्डली ! कुमारी ! कुटिले ! चण्डि ! चराचर-सवित्रि ! चामुण्डे !
गुणिनि ! गुहारणि ! गुह्ये ! गुरु-मूर्ते ! त्वां नमामि कामाक्षि !!

सम्पादकीयम्

१ श्रीभ्रमराम्बिकाष्टकम् : गर्ग महर्षि १
२ श्रीविद्या-साधना : आर० एस० शास्त्री ३
३ वेदमुलु स्वतः प्रमाणमुलु : के सूर्यनारायण ७
४ धर्ममु—ब्रह्ममु : श्रीचिन्दानन्द भारती १०
५ द्वैताद्वैत-विशिष्टाद्वैत-मुकु उपदेश-उपाय मूल मात्रं : श्रीत्रिपुरानन्दनाथ १७
६ रामाभिमानम् गोन्ना मुग्गुरु मुगदलु : श्री ए० एस० दक्षिणामूर्ति १८
७ काल-शक्ति-विलासमु : श्रीराम नरसिंह मूर्ति २५
८ श्रीपरा-शक्ति-भक्ति : श्री मुलुगु पापयाराध्युलु २६
९ संदेहालु समाधानालु : श्रीत्रिपुरानंदनाथ २७
१० सार-तत्त्वोपदेशमु : आचार्य शङ्कर भगवत्पादुल २८
११ भावनोपनिषद् : श्री के० बी० रङ्गाराव २९
१२ सप्रसिद्ध शक्ति-क्षेत्रमु : श्री पी० सत्य-नरसिंह राव ४६
१३ देवी-भागवतम् : श्रीपिसुपाटि बालकृष्ण ४७

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तेलुगु 'चण्डी' के प्रकाशनार्थ 'श्रीबाला-महाविद्या-पीठम्' के संस्थापक श्रीत्रिपुरानन्दनाथ जी स्वयं प्रयाग पधारे थे और लिखित रूप में 'चण्डी' नाम के उपयोग की अनुमति माँगी थी क्योंकि बिना अनुमति के वे इस नाम से तेलुगु पत्रिका का प्रकाशन नहीं कर सकते थे। यह अनुमति उन्हें सहर्ष बिना किसी शर्त के प्रदान कर दी गई। भारत की पत्रकारिता के इतिहास में कदाचित् यह पहली घटना है। आशा है, 'चण्डी' के पाठक इस सूचना से आह्लादित ही होंगे।

श्रीललिता-विजयम्

(अध्याय ५)

पूज्य श्री १००८ श्री स्वामी अद्वयानन्द जी सरस्वती, श्रीछायापीठं, त्रिची (तमिलनाडु)

[चण्डी वर्ष ४६—ज्येष्ठ २०४४ वि०: जून १९८७ के आगे का अंश]

भगवती ललिताम्बिका के आविर्भाव की कथा

[दक्षिण भारत के श्रीछाया-पीठ का विस्तृत सचित्र परिचय 'चण्डी' वर्ष, ४५ अङ्क ७-८ में प्रकाशित हो चुका है। हमारी प्रार्थना पर उक्त पीठ के वयोवृद्ध श्रीगुरुदेव जी ने अपने प्रवचनों को 'चण्डी' में प्रकाशनार्थ भेजने की अनुमति देने की कृपा की। विक्रम सम्वत् की २१ वीं शती के ४५ व वर्ष की समाप्ति के अवसर पर आपके उद्बोधक प्रवचनों का श्रीगणेश किया गया है। हमें आशा है कि 'चण्डी' के पाठक बन्धु इस लेख-माला के प्रत्येक लेख को ध्यान से पढ़ेंगे और भगवती श्री ललिताम्बिका की अहैतुकी दया को अनुभव करेंगे। —सं]

शिष्य ने पूछा : गुरुदेव ! मैं जानना चाहता हूँ कि निराकारा, सत्-चित्-आनन्द-स्वरूपा ललिता-ब्रह्म ने किस प्रकार अपने को देवी-स्वरूप में प्रकट किया। अगस्त्य भी यही जानने को उत्सुक हैं किन्तु आप कहते हैं कि महर्षि हयग्रीव ने अगस्त्य को ललिता देवी के एक स्वरूप पार्वती के अवतार और वीरभद्र अवतार आदि के सम्बन्ध में बताया। यदि ऐसा है, तो क्या पार्वती देवी ही ललिताम्बिका हैं और अब क्या आप केवल ललिताम्बिका के आविर्भाव के सम्बन्ध में ही बताएँगे ?

गुरुदेव ने कहा : वत्स ! शीघ्रता मत करो। मैं तुम्हें केवल ललिताम्बिका की कथा आदि से अन्त तक बताने जा रहा हूँ। तुम्हें जानना चाहिए कि ललिताम्बिका कब और किसलिए प्रकट हुईं। इसी से अगस्त्य ने हयग्रीव से देवी-आविर्भाव के मूल कारण भण्डासुर का इतिहास पूछा था। भण्डासुर कब और कैसे उत्पन्न हुआ, इसी के अनुसन्धान में उन्होंने सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन किया है। अतः, सावधान होकर सुनो। इस प्रकार तुम पराम्बा का सम्पूर्ण इतिहास आदि से अन्त तक जान सकोगे।

अब गुरुदेव ने आगे की वार्ता कही—

हयग्रीव ने ललिता का सतत ध्यान करनेवाले आनन्द-मय परम शिव के कैलास-शासन से लेकर दक्ष का शिर काटे जाने तक का इतिहास कह सुनाया। उसके तुरन्त बाद ही उन्होंने देखा कि सायं-पूजा का समय हो गया है। उन्होंने कहा कि अब आगे की कथा कल सुनाई जायगी। उन्होंने पूर्व की भाँति पूजा की और प्रसाद दिया।

अगले प्रातः-काल, प्रातः-पूजा करने के बाद हयग्रीव सभा-कक्ष में आए, जहाँ भक्तों का समूह एकत्र था और अपनी कथा प्रारम्भ की।

दक्ष की पत्नियों ने जब देखा कि शिव को छोड़कर इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और अन्य देवों तथा ऋषियों को यज्ञ के लिए बुलानेवाले उनके पति का शिर वीरभद्र ने एक क्षण में काट कर भस्मीभूत कर डाला है, तो वे भय से काँपने लगीं। उनके केश बिखर गए, पैर लड़खड़ाने लगे, जीभ सूख गई, गला रुँध गया, आँसू बहने लगे, आभूषण अस्त-व्यस्त हो गए और ऐसी विह्वल दशा में वे वीरभद्र की ओर दोनों भुजाएँ ऊपर उठाए दौड़ीं तथा फूट-फूट कर रोने लगीं। वे अत्यन्त कातर वाणी में वीरभद्र के हृदय को द्रवित करने के लिए उनकी स्तुति करने लगीं। यथा—

"हे देव-देव ! विश्व की प्रलय करते समय आप भयङ्कर हो जाते हैं। हे वीरभद्र ! आप परम दयालु हैं। आप शिव-स्वरूप हैं। सभी के पालन में आप तत्पर रहते हैं। आप पापी का नाश और पुण्य करनेवालों की रक्षा करते हैं। प्रलय के समय आप अपने तीसरे नेत्र से तीनों लोकों को भस्म कर देते हैं। आप ही ब्रह्मा के रूप में उसका पालन करते हैं। आप सर्व-व्यापी हैं। आप संसार की किसी भी वस्तु से लिप्त नहीं हैं। आपने हमारे पति को, जिन्होंने प्रजापति होने के घमण्ड में धृष्टता की थी, उनके अपराध के लिए उचित ही दण्ड दिया है। महा-प्रलय के समय आपके संहार-कार्य के लक्ष्य तीनों लोक होते हैं। क्या ऐसा नहीं है ? क्या ये प्रजापति, जो इस विश्व में एक तृण के समान हैं, आपके कोप के पात्र हैं ? अतः आप प्रसन्न हों और उनके जीवित रहने का उपाय करें, जिससे हम अपने पति के साथ रह सकें।"

दक्ष की पत्नियों की स्तुति से वीरभद्र का क्रोध शान्त हो गया। सहानुभूति में उन्होंने पास ही खड़े एक छाग के शिर को काटकर दक्ष के धड़ से जोड़ दिया और उन्हें जीवित कर दिया। छाग-शिर से युक्त दक्ष खड़े हो गए और वीरभद्र को प्रणाम कर स्तुति करने लगे। यथा—

दक्ष द्वारा भगवान् शिव की स्तुति

"हे महा-वीर ! नक्कन (शिव) के बिना विष्णु और देवताओं को लेकर मैंने जो यज्ञ किया था, वास्तव में वह यज्ञ ही नहीं था। यह मात्र एक अभिचारी यज्ञ मैंने किया था, जो मेरा ही घातक था। यदि कोई यज्ञ शिव की उपेक्षा करके किया जाता है, तो वह इसी प्रकार का अनिष्ट-कारी होगा क्योंकि शिव ही यज्ञ-स्वरूप और यज्ञ के अभीष्ट फल हैं। हे वीरभद्र ! आपको नमस्कार। कोटि-कोटि बारम्बार नमस्कार। प्रजापति होकर मैंने गर्वोन्मत्त होकर नक्का के बिना ही यज्ञ किया था। आज असहाय होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ। कृपया मेरे महान् अपराध को क्षमा करें और अपने अनुग्रह से मेरी रक्षा करें। तीनों लोकों के स्वामी आपको अपमानित करनेवाले शिव-द्रोहियों को नरक-सागर से कोई बचा नहीं सकता। मेरा यह सौभाग्य है कि मेरे महान् पाप के लिए आपने मुझे यह हलका दण्ड दिया है। दया-कोष ऐसे साक्षात् स्वरूप की स्तुति विश्व में कौन कर सकता है ? आज से आपके ही चरणों की सेवा करने का मैंने निश्चय किया है।"

दक्ष की स्तुति से प्रसन्न होकर वीरभद्र उन पर प्रसन्न हुए और उन्होंने उनके शरीर से यज्ञ-देवता के शिर को संयुक्त कर उसे प्राणवान् कर दिया। तदनन्तर वे कैलास जा पहुँचे।

अगस्त्य बोले—"वीरभद्र के कथामृत से मुझे बड़ा आनन्द मिला। अब मैं शेष कथा सुनना चाहता हूँ। बाला पार्वती ने क्या विवाह किया ? शिव ने क्या देवी की खोज की ? क्या देवी स्वयं उनके पास गईं ? पार्वती-परमेश्वर का विवाह कैसे सम्पन्न हुआ ? हे हयग्रीव ! आप समस्त सूचनाओं के कोष हैं। कृपया ये सारी बातें विस्तार से बताइए।"

हयग्रीव ने कहा—"मैं उन पवित्र कथाओं को कहूँगा, जिनके सुनने से पाप दूर भाग जाते हैं। जब विश्वकल्याण करनेवाली पार्वती देवी के दिव्य सौन्दर्य से सारा जगत् चमत्कृत होने लगा, तब उनके पिता हिमवान विचार करने लगे कि 'रत्न-दीप के समान प्रकाशमाना देवी ने हमारे परिवार में अवतरित होकर मुझे असीम ख्याति से सम्पन्न किया है। मेरी जाति धन्य हो गई। अब उसने विवाह की आयु प्राप्त कर ली है किन्तु तीनों लोकों में उसके अनुरूप कोई वर नहीं है। इन्द्र और अन्य अष्ट दिक-पाल, ब्रह्मा या विष्णु—कोई उसके योग्य नहीं है। किससे उसका विवाह करूँ ?"

पार्वती-परमेश्वर का विवाह

पर्वतराज इसी प्रकार चिन्ता में पड़े थे कि वीणा बजाते हुए नारदजी वहाँ पहुँच गए। उनकी दुग्ध-धवल देह, विद्युत्-समान चमकीले उनके धूसर केश और नाद-ब्रह्म का गुञ्जन करनेवाली उनकी 'महती' नाम की वीणा—सभी की शोभा अपूर्व थी। मधुर वाणी में चन्द्र-शेखर की स्तुति करते हुए और उसी के आनन्द में मग्न नारदजी गिरि-राज के समीप पहुँचे। उन्हें देखते ही हिमवान उठकर खड़े हो गए, अति सम्मानपूर्वक उनका स्वागत किया, उन्हें अर्घ्यादि अर्पित कर उच्चासन पर बिठाया।

नारद जी ने हिमवान से कहा—'देवों में इन्द्र के समान आप पर्वतों के इन्द्र हैं। आपका कल्याण हो। मैं आपके अनुपम स्वागत से अति प्रसन्न हूँ। आप और आदि-शेष, आदि-कूर्म तथा अष्ट दिग्-गज ही सारे भू-मण्डल को धारण करते हैं। अतः आप श्रेष्ठ हैं। यही नहीं, चौदह भुवनों की जननी अम्बिका आपकी पुत्री के रूप में अवतरित हुई हैं—इससे बढ़कर वरदान आप क्या पा सकते हैं! वे रमा अष्ट-सिद्धि-धात्री हैं। वे ही परम शिव के अर्द्धाङ्ग की अधिकारी हैं। वे ही आत्म-विद्या जैसी गुह्य विद्या हैं। वे पाप-हारिणी हैं। वे ही परम शिव की अर्द्धाङ्गिनी होनेवाली हैं। आप बिना किसी ऊहा-पोह के उन्हें तुरन्त 'थाणु आश्रम' में पहुँचा दें। मेरी बात की उपेक्षा न करें। सती देवी के देह-त्याग के बाद से परम शिव समाधिस्थ हो घोर तप कर रहे हैं। उमा को वहीं ले जाइए और उनकी सेवा में छोड़ आइए। समय आने पर वे उमा को मिलेंगे। विवाह होगा। इस विवाह-सम्बन्ध में चूड़पद्मासुर से पीड़ित देवता सहायता करेंगे। जैसा मैं कहता हूँ, वैसा ही आप करें।"

इस प्रकार नारद जी ने अपनी ज्ञान-दृष्टि से भावी को जानकर निर्देश किया। पर्वत-राज ने इस निर्देश को ध्यान से सुना और यह अनुभव किया कि उनका कुल और भी गौरवान्वित हो उठा है। नारद जी अपने गन्तव्य को चले गए।

पर्वत-राज ने अपनी पुत्री को उसकी दो सखियों--जया और विजया के साथ लिया और 'थाणु आश्रम' में जा पहुँचे। उस आश्रम की रक्षा करोड़ों गण कर रहे थे। फल और फलों से वह आच्छादित था। वह आश्रम कैलास पर्वत के पाद-तल के सन्निकट अवस्थित था और शान्ति-प्रिय पशुओं से घिरा हुआ था। घनी छाया देनेवाले कंगोली और देवदारु जैसे ऊँचे तथा सुन्दर वृक्ष वहाँ शोभायमान थे। शिलाओं पर कस्तूरी मृग विचरण किया करते थे और उनकी सुगन्ध से आश्रमवासी सदा सुरभित रहते थे। आश्रम में धर्मनिष्ठ लोग और ब्रह्मचारी भक्त मस्तक एवं शरीर पर पवित्र भस्म लगाए निवास करते थे। तोते और अन्य पक्षी स्पष्ट शब्दों में शिव के नामों की रट लगाए रहते थे। दूसरे पक्षी भी कुछ कम स्पष्ट रूप में उन्हीं नामों को दुहराते रहते थे। कोयल और मैना जैसी चिड़ियाँ अपने सङ्गीत-मय स्वरों में शिव के नामों—चन्ड-चूड, शिव, ईश्वर, नील-कण्ठ, शम्भो आदि का उच्चारण करती रहती थीं।

उस आश्रम में कोई महिला नहीं थी क्योंकि वह तप के हेतु निर्दिष्ट था। हिमवान ने उमा और उसकी सखियों को उस आश्रम के बाहर छोड़ दिया और स्वयं बड़ी भक्ति एवं विनम्रता के साथ भीतर प्रवेश किया। शिव के स्थान के बाहर कुछ आगे ही शिलाधर के पुत्र नन्दीदेव विराजमान थे। हिमवान ने झुककर उन्हें प्रणाम किया और उनसे प्रार्थना की—"हे नन्दिकेश्वर! आप परम शिव के अग्र-गण्य उपासक हैं। मैं, हिमवान, प्रभु के श्रीचरणों के पूजनार्थ यहाँ आया हूँ। कृपया भगवान् को उचित समय पर सूचित करें और उनके दर्शनों की व्यवस्था करें।"

तुरन्त ही नन्दिकेश्वर भीतर गए और हाथों से अपने मुख को ढँके हुए निवेदन किया--"आपके चरणों के दर्शन के लिए हिमवान प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

भगवन् ने भ्रू-सङ्केत से उन्हें भीतर लाने का आदेश किया।

नन्दी द्वारा प्रविष्ट पर्वत-राज ने परम शिव को साष्टाङ्ग-प्रणाम कर अपना उद्देश्य निवेदित किया—"भगवन्! आपकी स्तुति सारा विश्व करता है। आप जन्म-मरण के परे हैं। आप शुद्ध सत्-स्वरूप हैं। आपके पवित्र चरणों का ध्यान मात्र करने से सभी पाप तत्क्षण विलीन हो जाते हैं। समस्त तपस्याओं के फल-स्वरूप आपके चरणों की सेवा का अवसर मिलता है। आपकी पूजा किए बिना कोई सफल-काम नहीं हो सकता। मेरी एक प्रार्थना है। कृपया इसे सहर्ष स्वीकार करें। हे शङ्कर! मेरी सत्-स्वभावा पुत्री पार्वती आपके चरणों की सेवा करना चाहती है। पुरुष हो या नारी, निर्जीव हो या सजीव--प्रत्येक के लिए अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करने के लिए क्या आपकी कृपा ही एकमात्र श्रेष्ठ साधन नहीं है? मेरी पुत्री आत्म-संयम में श्रेष्ठ है, वह आपकी तपस्या में किसी प्रकार बाधक नहीं होगी। आपके तप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। साथ ही उसकी अभीष्ट कामना पूर्ण हो जायगी। यदि आप अनुमति दें, तो मैं अपनी पुत्री को भीतर ले आऊँ। वह बाहर अपनी सखियों के साथ प्रतीक्षा कर रही है। भगवन्! वह आपके आश्रम को स्वच्छ रखेगी, इसे सजाएगी और शोभा-युक्त करेगी, पुष्प-चयन करेगी और पुष्प-मालाएँ बनाएगी, जल-प्रपात से जल लाएगी और स्त्रियोचित अन्य सभी सेवाएँ करेगी।"

हिमवान के इस प्रकार कहने पर भगवान् बोले--'इसमें दोष क्या है? उसे ऐसा करने दो।'

सुनकर हिमवान प्रसन्न हो उठे। बाहर गए और अपनी पुत्री को भीतर ले आये। उसे भगवान् की सेवा में नियोजित करके अपने निवास को वापस प्रस्थान किया।

पार्वती बड़ी श्रद्धा के साथ अपनी सखियों सहित भगवान् शिव की सेवा करने लगीं। आश्रम को स्वच्छ रखने में, पुष्प चयन करने में या मालाएँ गूँथने में अथवा जल लाने में वह तनिक में ढीली नहीं पड़ती थीं। पूजा-स्थल को वह चन्दन-लेप, पुष्प-मालाओं, पूर्ण-कुम्भ, अक्षत और सुन्दर अल्पनाओं से सजाया करतीं। अर्घ्यादि देने के लिए परम पवित्र जल और पूजन के लिए रक्त कमल-पुष्प लाया करतीं। इस प्रकार देवी परा-शक्ति ने महा-देव की सेवा काफी समय तक की, जो परा-शक्ति की ही आराधना में तन्मय रहते थे।

पद्मासन में विराजमान भगवान् पशुपति अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित कर अपनी दृष्टि नासाग्र पर स्थिर रखते थे। अपने शरीर को श्री-चक्र के रूप में ध्यान करते हुए शिर के मूर्धा-मुकुट में स्थित ब्रह्म-रन्ध्र को विन्दु-पीठ समझते थे और वहीं पञ्च-ब्रह्मासन पर सहस्र-दल-कमल पर विराजमाना ललिताम्बिका की भावना किया करते थे। उनका चित्त उस ब्रह्म-पद में लीन रहता था। वे निस्तरङ्ग आनन्द-सागर-वत्, योग-समाधि में अहर्निश निमग्न रहते थे।

ब्रह्मा द्वारा शूरपद्म आदि को पराभूत करने की योजना

इसी बीच शूरपद्म और अन्य असुरों से पराजित देव-गणों ने आकर चतुर्मुख ब्रह्मा की शरण ली और उनकी स्तुति करते हुए असुरों द्वारा अपने ऊपर आई विपत्ति कह सुनाई।

देवताओं ने कहा: "हे ब्रह्मदेव! आप विश्व का सृजन करते हैं और इसकी रक्षा करते हैं। हम देवता केवल आपके ही सहारे रहते हैं, ऐसी दशा में आप विपत्तियों से हमारी रक्षा करने के प्रति उदासीन

क्यों हैं ? असुरों का अत्याचार सहने में हम असमर्थ हैं। छिपने तक को हमें कहीं स्थान नहीं मिलता शूरपद्म १००८ अण्डों पर शासन कर रहा है। उसकी आयु का अनुमान तक हमें नहीं है। सौ युगों से भी अधिक समय से उसका शासन उग्रतर होता जा रहा है, उसमें कोई कमी नहीं आई। अमृत पी लेने से हम अपने को मार भी नहीं सकते और हमें पीड़ा-ही-पीड़ा सहनी पड़ रही है।

"हे कमलासन ! क्या आप हमारे कष्टों को नहीं देख रहे हैं ! हमने हिरण्यनाशक तिरुमल (विष्णु) से प्रार्थना की। वे गरुड़ पर आसीन होकर आए और पहले गजानन दारकासुर पर आक्रमण किया तथा उससे युद्ध किया किन्तु उससे लड़ते-लड़ते वे थक गए और जब उन्होंने बड़े क्रोधपूर्वक उसके विरुद्ध अपने सुदर्शन चक्र को लगाया, तो दारक ने उसकी हँसी उड़ाई। चक्र उसकी छाती को भेद नहीं पाया, उलटे वहीं अटक कर उसके गले का आभूषण-सा बन गया ! कोटि-सूर्य-प्रकाश वाले उस चक्र से अपन वक्ष को सुशोभित देखकर दारुक और भी बलोन्मत्त हो उठा। तिरुमल अपने लोक को वापस लौट गए।

"सिंहानन असुर दारकासुर का बड़ा भाई है। उसके एक सहस्र सिंहानन हैं और दो सहस्र भुजायें हैं। वह दारुकासुर से सहस्र-गुना अधिक शक्तिशाली है। इन असुरों के पुत्र भानुगोपन आदि अपने पिताओं के समान ही दुर्द्धर्ष हैं। उनकी दुर्दमनीय सेनाएँ १००८ अण्डों (लोकों) में व्याप्त हैं। शूरपद्म और इन असुरों को कैसे पराभूत किया जाय ? ये सभी महा-समुद्र के मध्य में वीरमहेन्द्रपुर को केन्द्र बनाकर सर्वत्र शासन कर रहे हैं। धर्मराज यम अत्यन्त भयभीत हैं। वे शूरपद्म के एक साधारण सेवक के प्राण तक लेने से डरते हैं। इधर-उधर कहीं वे छिपते फिरते हैं। यम के कर्तव्यों का निर्वाह शूरपद्म का ही एक सेवक कर रहा है।

"हे ब्रह्मदेव ! क्या आप ही हम लोगों के साथ-साथ हमारे शत्रु इन असुरों के भी स्रष्टा नहीं हैं ? उनके लिए आपने क्या आयु निर्धारित की है ? आपको उनके नाश का कुछ उपाय सोचना ही चाहिए। अथवा आपके आश्रित जो हम लोग हैं, हमारा भी अन्त कर दीजिए। उन शत्रुओं के द्वारा पीड़ित होने की अपेक्षा हम लोगों का मर जाना ही अधिक अच्छा है।"

देवताओं की कातर प्रार्थना सुनकर ब्रह्मदेव ने कहा : "हे देवों, निराश मत हो। ध्यान से सुनो। यद्यपि मैं सबकी सृष्टि करता हूँ किन्तु मैं उनके कर्मों के फल के अनुसार ही उनकी सृष्टि कर सकता हूँ। अपनी इच्छा से मैं कुछ भी नहीं कर सकता। परा-शक्ति ललिता ब्रह्म ही एकमात्र सर्वथा स्वच्छन्द सत्ता हैं। केवल वे ही स्वेच्छानुसार अपनी क्रीडा के समान कुछ भी कर सकती हैं। तथापि वे भी दूसरों के कर्म-फल के अनुसार ही करती हैं, उससे भिन्न वे नहीं करतीं। उनके सिवा, अन्य सभी पराधीन हैं। मैं स्वयं कुछ नहीं हूँ। केवल वही परा-शक्ति सब में उनकी सीमित शक्ति के अनुपात में विद्यमान हैं और सब कुछ करती हैं। [क्रमशः]

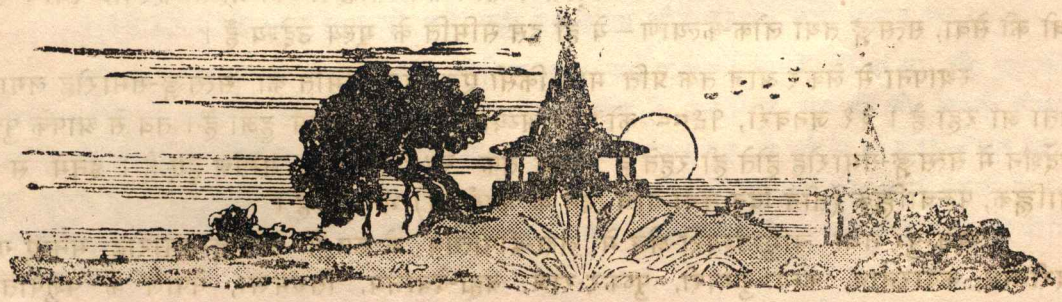

श्रीचामुण्डेश्वरी देव्यालय के प्रतिष्ठापक
एवं
श्रीचामुण्डेश्वरी सेवा समिति शाक्त-मण्डल के व्यवस्थापक

कुलाचार्य श्री वेंकट रमणय्या जी

इस पुण्य-भूमि भारतवर्ष में सकल चराचरात्मक सारे संसार की मूलभूत प्रकृति की शक्ति के रूप में उपासना करनेवाली संस्थाओं तथा व्यक्तियों की कोई कमी नहीं है। उनमें एक विशिष्ट व्यक्तित्व थे श्री वेङ्कटरमणय्या जी।

श्री वेङ्कटरमणय्या जी का जन्म आन्ध्र प्रदेश के नेल्लूरु जनपद के कोडूरु ग्राम में सन् १९१७ में हुआ। आपकी माता का नाम शिव कामम्मा था। आपके पिता श्री वेङ्कट सुब्रह्मण्य शास्त्री प्रख्यात शक्ति-उपासक थे तथा आथर्वण-पञ्चानन, पादुका-परिमित-परिपूर्ण-दीक्षित, तपश्चक्रवर्ती आदि पदवियों से विभूषित थे।

वेङ्कट-रमणय्या जी को आपके शिष्य-गण 'अय्यागारु' के नाम से सम्बोधित करते थे। अय्यागारु ने बचपन में ही संस्कृत तथा तेलुगु भाषाओं का अध्ययन किया और साथ ही कुल-विद्या की उपासना को भी अपनाया। कुछ वर्षों तक आपने श्रीशैल आदि दिव्य क्षेत्रों में तथा हिमालय प्रान्त की सिद्ध भूमियों में रहकर, तपस्या कर अनेक सिद्धियों को प्राप्त किया। 'प्रपेदिरे प्राक्तन-जन्म-विद्याः'– इस कालिदास-सूक्ति के अनुसार आपको पाण्डित्य के साथ देवी-उपासना की सिद्धि, अष्टावधान–नामक-प्रतिभा-सम्पन्न-कविता-पद्धति में चातुर्य, आशु-कवित्व आदि बिना प्रयत्न प्राप्त हुए।

ज्योतिष तथा वैद्यक-शास्त्र में भी आपकी प्रतिभा असाधारण थी। बहुत से रोगों को, जिनकी सफल चिकित्सा एलोपैथी के बड़े-बड़े डाक्टर नहीं कर सके, आपने अपनी चिकित्सा से दूर कर दिया। आपकी चिकित्सा औषधियों से ही नहीं, बल्कि कभी वाक्-रूप में, कभी मिट्टी-कुंकुम आदि के रूप में भी होती थी।

अय्यागारु अनेक प्रदेशों में घूम-फिरकर सन् १९६४ में हैदराबाद में स्थिर हुए। सन् १९६७ के पौष मास में आपने 'श्री चामुण्डेश्वरी सेवा-समिति शाक्त-मण्डल' की स्थापना की। तपो-रूप जप-यज्ञों द्वारा सभी भक्तों के सर्व-अरिष्टों की निवृत्ति के साथ सर्व-सिद्धियों को प्राप्त करना, स्वार्थ-रहित देवी की सेवा, सत्सङ्ग तथा लोक-कल्याण– ये ही इस समिति के मुख्य उद्देश्य हैं।

स्थापना से लेकर आज तक प्रति मास किसी एक दिन समिति का सत्सङ्ग-समारोह लगातार होता आ रहा है। ३१ जनवरी, १९८८ को पूज्य अय्यागारु का स्वर्गवास हुआ है। तब से आपके पुत्र के निर्देशन में सत्सङ्ग-समारोह होते ही रहते हैं। अब तक २५४ समारोह सम्पन्न हुए हैं। इनमें से कुछ त्र्याह्निक, पञ्चाह्निक (तीन दिन तथा पाँच दिन के कार्यक्रम) भी हुए हैं।

अलम्पुरं तथा चामुण्डेश्वरी-क्षेत्र में लक्ष-दीपोत्सव के रूप में सत्सङ्ग-समारोह मनाए गए। बदरीनाथ, केदारनाथ, कन्या-कुमारी, पुष्कर-राज, ब्रह्म-देवालय, तिरुमला, नेपाल के पशुपतिनाथ

देवालय, वासर सरस्वती-क्षेत्र आदि देश-प्रदेश में प्रसिद्ध अनेक स्थलों में समारोह हुए। इन समारोहों में चामुण्डेश्वरी देवी की छवि तथा ताम्र-कलश की स्थापना कर विधि-पूर्वक आवरणार्चना सहित महा-पूजा, सप्तशती-हवन के साथ ही जप तथा पारायण भी किए जाते हैं। कभी-कभी कुमारी-पूजा का भी कार्य-क्रम में समावेश किया जाता है।

इतने वर्षों से चलते आ रहे समारोहों में कभी कोई कमी या असुविधा नहीं हुई। कपड़े के तम्बू में सम्पन्न समारोहों में धारापात वर्षा होने पर भी न अखण्ड-दीप को, न होम-कार्य-क्रम को कभी कोई क्षति पहुँची। बुग्गा-रामेश्वरं. उमा-महेश्वरं आदि स्थलों में भी, जहाँ मनुष्य-सञ्चार बहुत दूर तक नहीं पाया जाता, कार्य-क्रम अधिक शोभायमान रहे।

पूज्य अय्यागारु जी के व्यतित्व तथा कृतित्व को कोई समझ नहीं पाया। आपकी उपासना क्या और कैसी है ? किसी को भी विदित नहीं हुआ। कौलिक उन्हें महा-कौलिक के रूप में, बगला उपासक उन्हें बगला-सिद्ध महा-पुरुष के रूप में दर्शन करते थे। आप उन-उन व्यक्तियों को उनके अनुरूप स्वयं को दर्शाते थे। वैद्य, ज्योतिर्विद्, कवि आपको उन-उन विद्याओं में कोविद समझते थे। आप वास्तु विद्या—विशेषतः देवालय-वास्तु में प्रखर पाण्डित्य रखते थे। आपके द्वारा अनेक मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवायी गई।

आपकी व्यवहार-पद्धति भी अनूठी तथा विलक्षण थी। विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्ववाले आपके शिष्य थे, जिनमें पण्डित, विद्या-विहीन, धनिक, धन-हीन, शान्त, उद्वेगी, वृद्ध, युवा, बाल तथा महिलाएँ सभी हैं। ये सभी शिष्य गुरुजी को अपने से बहुत सन्निहित मानते थे। यह शिष्यों से आदर तथा प्रेम के साथ व्यवहार करने की आपकी विशिष्ट शैली का ही प्रभाव था।

आपका वेष, भाषा तथा आहार-विहार बहुत ही सरल थे। चटनी, तक्र (छाछ) तथा चावल—यही आपका प्रियतम आहार था, किन्तु भक्तों के लिए हर समय मिष्ठान्न एवं स्वादिष्ट भोजन की व्यवस्था कराते थे।

अन्न-दान को आप अत्यधिक महत्व देते थे। बीस से अधिक वर्षों से चलते आ रहे उक्त समारोहों में करोड़ से अधिक व्यक्तियों का अन्न-दान सम्पन्न हुआ। लक्ष-दीपोत्सव तथा चामुण्डेश्वरी-प्रतिष्ठा के समय केवल एक ही व्यक्ति का एक लारी भर चावल प्रदान करना इस विषय का समर्थन करता है। कभी भी किसी वस्तु को बचाने में आप सहमत नहीं होते थे। दो-तीन दिन ठहरकर ही सही, शेष वस्तुओं का विनियोग करके ही निकलते थे।

उपासना के सम्बन्ध में आप सभी को एक नियम मुख्यतया बताते थे—'शुचि-अशुचि का अधिक विचार न करते हुए सर्व-काल, सर्व-अवस्थाओं में मन्त्र का जप करना।'

आपके शिष्यों के लिए आप जो कहें, वही वेद-वाक्य और जो देते, वही प्रसाद था।

अन्तिम समय कैन्सर-रोग से आप पीड़ित हुए। कर्म-फल को भोगने की इच्छा थी आपकी। जो अनेक व्यक्तियों को असाध्य रोगों से छुटकारा दिला चुके हैं, उन सिद्ध गुरु जी को अपनी कैन्सर-व्याधि से विमुक्त होना कोई बड़ी बात नहीं थी। भक्त-गण भ्रम-समुद्र में डूबे थे। सदा—'यह स्वार्थ-रहित संस्था है, असत्य तथा स्वार्थ को यहाँ स्थान नहीं', ऐसा कहनेवाले महान् व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए स्वीय शक्ति का उपयोग नहीं करेंगे—ऐसी धारणा किसी को सूझी नहीं और आप उसी रोग से पीड़ित हो स्वर्गवासी हुए।

चामुण्डेश्वरी देवी जी का एक अद्वितीय मन्दिर निर्माण कराना उनके जीवन का लक्ष्य था, जिसका उन्होंने अंकुर डाला और उस मन्दिर को सेतु से शीताचल तक सभी देवी-भक्तों के एक अनोखे आराध्य दिव्य-पीठ के रूप में सम्वर्धन करना आपका सङ्कल्प था। अनेक प्रदेशों के भ्रमण के बाद मञ्जीरा (गरुड़-गङ्गा) नदी के पूर्वी तट पर मेदक जनपद में जोगीपेठ के समीप चिट्कुल ग्राम की सीमा में आपने एक स्थल चुना। शंकु-स्थापना (शिला-न्यास) के दिन ही उस स्थान में, जो उक्त ग्राम से ३-४ मील दूर है, हजारों लोगों ने भोजन किया। उसी दिन से भक्तों का आकर नारियल फोड़ना, प्रदक्षिणा करना और उनकी कामनाओं की पूर्ति होना प्रारम्भ हो गया।

सन् १९८३ के पौष मास में चामुण्डेश्वरी देवी जी की मूर्ति की स्थापना वहाँ अत्यन्त शोभा-पूर्वक हुई। मूर्ति नौ फीट की उत्तम ग्रैनेट शिला पर उत्कीर्ण की गई। इसके लिए योग्य शिला गोदावरी-तट पर स्थित धर्म-पुरी क्षेत्र से लाई गई। प्रतिष्ठा-कार्यक्रम उज्ज्वल और अद्वितीय रहा। १०० लीटर दूध, १०० लीटर दधि और पर्याप्त इतर द्रव्यों द्वारा प्रस्तुत पञ्चामृत से अभिषेक सु-सम्पन्न हुआ। इसी प्रकार आपके आध्वर्यव में की गई श्रीत्रिपुरसुन्दरी देवी की प्रतिष्ठा (हैदराबाद में) लक्ष-दीपोत्सव 'न भूतो न भविष्यति' ही है। इन उत्सवों का दर्शन करनेवाले भक्त-गण आज भी आपका स्मरण करते हुए अपने आपको धन्य और भाग्यवान् मानकर कृतार्थ होते हैं।

आपके द्वारा कराई गई कुमारी- पूजाएँ भी विलक्षण विधि-सम्पन्न ही होती थीं। अन्य उपासकों की तरह आप केवल कुमारी के चरण धोकर, वस्त्र पहनाकर ही तृप्त नहीं होते थे, कुमारी-पूजा भी देवी-पूजा के साथ वैसी ही कराते थे, पञ्चामृतादि से अभिषेक आदि भी कराते थे। सभी भक्तों को कुमारी के चरणों पर प्रणाम कराकर कुमारी द्वारा उन्हें तिलक धारण करवाते थे। पूजा से पहले कुमारी स्वयं देवी का मन्त्र-पूर्वक आवाहन करते थे। छोटे वयवाली कन्या भी, जो तत्काल ही आपके द्वारा जनता में से चुनी जाती थी, दो-तीन घण्टों से भी अधिक देर तक खड़ी रहकर सब भक्तों को तिलक लगाती थी। इससे सभी आश्चर्य - चकित होकर उस 'कुमारी' को साक्षात् देवी के रूप में ही अनुभव करते थे।

श्रीचामुण्डेश्वरी मन्दिर, जिला मेडक, आन्ध्र प्रदेश का सड़क-मानचित्र

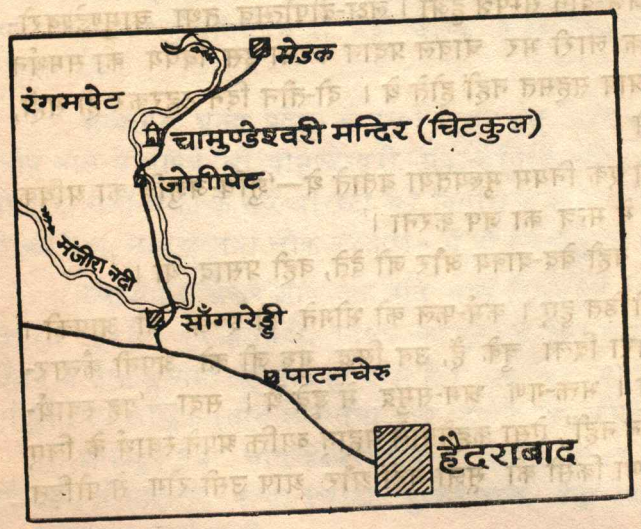

३ घण्टे की बस यात्रा--

१. हैदराबाद या सिकन्दराबाद से जोगीपेट तक वाया साँगारेड्डी

२. जोगीपेट से मेडक तक वाया चामुण्डेश्वरी मन्दिर

सप्तशती का महत्त्व

जो अनात्म-शक्तियाँ हमें इस संसार में जन्म-मरण के चक्कर में डालने का प्रयत्न करती रहती हैं, उन पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जाय, इसका क्रम 'सप्तशती' द्वारा पूर्णतः स्पष्ट है।

सप्तशती-कथा की रहस्य-वादिता ज्ञानी एवं विवेकी पाठक के समक्ष जैसे-जैसे खुलती जाती है, वैसे ही वैसे साधक के योग द्वारा आन्तरिक रहस्य का भेद भी खुलता जाता है।

आन्तरिक विकास और आध्यात्मिक साधना की विभिन्न अवस्थाओं का लाक्षणिक एवं बहुत ही सुन्दर रीति से दिव्य माता परा-शक्ति के विभिन्न स्वरूपों और अवतारों का परम पवित्र लीला द्वारा निरूपण किया गया है।

—श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

'सप्तशती' के सात सौ मन्त्र, जो प्रत्यक्ष रूप में श्लोक, अर्ध-श्लोक तथा श्लोक के चतुर्थांश आदि रूप में दिखाई देते हैं, विविध देवताओं के मन्त्र और बीजों तथा कूटाक्षरों से गर्भित हैं।

'सप्तशती' के प्रत्येक अध्याय में सविशेष और निर्विशेष सभी मन्त्र गुप्त रीति से निहित हैं। अतएव यह 'सप्तशती' सबसे श्रेष्ठ है। —'कुल मार्तण्ड' पं. योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति

जिस प्रकार श्रीमद्-भगवद्-गीता के विषय में कहा गया है कि जिसने गीता पढ़ ली, उसके लिये और सभी शास्त्र अप्रयोजनीय हैं, उसी प्रकार 'सप्तशती' के सम्बन्ध में, जो मूलतः भगवद्-गीता से तनिक भी अन्तर नहीं रखती, आचार्यों का प्राचीन सिद्धान्त है कि जिसने सप्तशती-तत्त्व समझ लिया—उसके लिए सभी तन्त्र अप्रयोजनीय हैं। यह सिद्धान्त सवा सोलह आने सत्य है। —दरभङ्गा-राजवंश-सम्भूत' श्रीश्यामानन्द नाथ

'सप्तशती' उपासना, कर्म-काण्ड और भक्ति-मार्ग की त्रिविध पथ-गामिनी मन्दाकिनी है। यह जीवों के सकल मनोरथ पूर्ण करने में कल्पतरु-सदृश है। वर्त्तमान काल में वैदिक मन्त्रों का प्रभाव उतना शक्तिशाली नहीं है, जितना कि श्रीसप्तशती के मन्त्रों का। यह सद्यः फल देनेवाली है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—चारों पदार्थ प्रदान करने की क्षमता इसमें है। —श्री कृपानाथ सिंह

रजि० सं० ३२९८१/५७] मई, १९८८ [रजि० सं० ए० डी० ९६

सिद्धिदा 'सप्तशती' सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकें

१—सप्तशती-तत्त्व १०-००

'सप्तशती' के ऐतिहासिक आख्यान की दार्शनिक व्याख्या।

२—सप्तशती-सूक्त-रहस्य १५-००

सप्तशती की पाँच स्तुतियों–१ रात्रि-सूक्त, २ शक्रादि-स्तुति, ३ श्रीनारायणी स्तुति, ४ श्रीदेवी-सूक्त की ज्ञान-दायिनी विस्तृत-व्याख्या।

३—मन्त्रात्मक सप्तशती (सजिल्द) ८०-००

इसमें सप्तशती के प्रत्येक मन्त्र के अनुष्ठान की अभूत-पूर्व अनुभूत विधि दी गई है, जो गुप्तावतार बाबाश्री हिमालय के गुह्यप्रदेश से १९२४ के अनेक वर्षों पूर्व ले आये थे।

४—सार्थ चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती) ४०-००

'गुप्तवती', 'शान्तनवी' आदि प्रसिद्ध संस्कृत टीकाओं के आधार पर हिन्दी में पहली बार दुर्गा सप्तशती के प्रत्येक श्लोक की विस्तृत व्याख्या

५—सप्तशती-रहस्य ५-००

सप्तशती का पाठ-क्रम, पुरश्चरण, मन्त्र-प्रयोग एवं प्रश्न-विचार

६—'विशुद्ध चण्डी' श्री दुर्गा सप्तशती ६-००

अर्गला, कीलक, कवच, नवार्ण-जप, सप्तशती-न्यास, रहस्य-त्रय—सभी विनियोग व न्यास युक्त और 'विस्तृत-पूजा-पद्धति'। प्रचलित सप्तशती की पुस्तकों की गम्भीर त्रुटियों को दूर कर 'विशुद्ध मूल पाठ' पहले पहल इस पुस्तक में प्रकाशित हुआ है। भगवती दुर्गा का ध्यान सम्मत सुन्दर रङ्गीन चित्र दिया गया है। नित्य-पाठ के लिये अनूठा संस्करण।

७—श्री दुर्गा सप्तशती (हिन्दी पद्यानुवाद) ५-००

जो लोग दुर्गा-सप्तशती संस्कृत में नहीं पढ़ सकते, उनके लिये तेरह अध्यायों का यह शब्दशः अनुवाद 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी द्वारा प्रस्तुत किया गया है और इसका पाठ करके सहस्रों बन्धु लाभ उठा रहे हैं।

८—श्री दुर्गायण (हिन्दी छन्दानुवाद) १०-००

अर्गला, कवच, कीलक, रात्रि-सूक्त, तेरह अध्यायों, देवी-सूक्त का अनूठा छन्दानुवाद।

९—बीज-त्रयात्मक दुर्गा-सप्तशती ४-००

रहस्य-तन्त्र' में निहित 'सप्तशती' अनुष्ठान की विधि।

१०—रुद्र-चण्डी ६-००

'रुद्र-यामल तन्त्र' में निहित 'सप्तशती' अनुष्ठान की विधि

सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक : ऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, इलाहाबाद—६